एमएपीएस-512

(MAPS-512)

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

(Indian Political System)

राजनीति विज्ञान विभाग

(समाज विज्ञान विद्याशाखा)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0मदन मोहन जोशी** **निदेशक (कार्यवाहक) –समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी ,नैनीताल
प्रो०एम.एम सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल	**प्रो0दुर्गाकान्त चौधरी** राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश
प्रो0 सतीश कुमार राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन **नियति रावत,**असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), राजनीति विज्ञान ,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 सूर्यभान सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान, इलाहबाद विश्वविद्यालय	1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12
डॉ. भुवन तिवारी ,असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,एम.बी.पी.जी. कालेज हल्द्वानी	13
डॉ. घनश्याम जोशी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, लोक प्रशासन, उत्तराखण्ड मक्तु विश्वविद्यालय,हल्द्वानी	14

आई.एस.बी.एन. -----------

कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2025

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :------------------------------------

संस्करण:2025, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पेज संख्या
खण्ड 1	**भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का परिचय**	
1	भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार	1-12
2	भारतीय संविधान की विशेशताएं	13-24
3	मूल अधिकार और मूल कर्तव्य	25-41
4	राज्य के नीति निर्देशक तत्व	42-51
खण्ड 2	**भारतीय संघवाद**	
5	भारतीय संघ का स्वरुप	52-61
6	संसद: संगठन एवं शक्तियां	62-73
7	राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति	74-92
खण्ड 3	**शक्ति संतुलन: केंद्र और राज्य सम्बन्ध**	
8	प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद की समीक्षा	93-102
9	केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध	103-116
10	राज्यपाल, मुख्यमंत्री	117-130
11	राज्य विधान मंडल	131-138
खण्ड 4	**भारतीय न्यायलय व स्थानीय स्वशासन**	
12	सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, संगठन ,कार्य एवं शक्तियां	139-148
13	भारतीय राजनीति में न्यायालय की भूमिका, न्यायिक सक्रियता	149-161
14	स्थानीय स्वशासन: पंचायती राज संस्थाएं एवं नगरीय स्वशासन	162-175

इकाई-1 भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संविधान की प्रस्तावना
1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान
1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान
1.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य
1.4.4 पंथ निरपेक्ष
1.4.5 समाजवादी राज्य
1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय
1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली
1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन
1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
1.6 लोक कल्याणकारी राज्य
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा जिससे आप भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के मूल आधार को समझ पाएंगे। इस इकाई में आप भारतीय संविधान की प्रस्तावना का गहन अध्ययन करेंगे जो संविधान के उद्देश्यों, मूल्यों तथा आदर्शों का परिचय देति है। इसके पश्चात भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला जायेगा जैसे की यह लोकप्रीय प्रभुसत्ता पर आधारोत है, विश्व का सबसे विस्तृत संविधान है और यह एक सम्पूर्ण लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना करता है। इसके अतिरिक्त, इस इकाई में आप जान पाएंगे की भारतीय संविधान के विभिन्न उपबंध किन किन देशी और विदेशी स्त्रोतों से प्रेरित होकर अपनाय गए हैं, जिस कारण भारतीय संविधान को विश्व का सबसे विस्तृत संविधान भी माना जाता है। यह इकाई भारतीय संविधान की बुनियादी समझ विकसित करने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1.भारतीय संविधान के विस्तृत होने के कारणों का अध्ययन कर सकेंगे।

2.भारतीय संविधान में संसदीय तत्व अपनाने के कारणों का अध्ययन कर सकेंगे।

3.भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों को समझ सकेंगे।

4.संसदीय शासन के बावजूद संविधान की सर्वोच्चता को समझ सकेंगे

1.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न होती है, इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी विभिन्न पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में असफल हो, या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य कई देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था। साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

> "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
> सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
> विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
> प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
> उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
> सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए
> दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ यह याद रखना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. **हम भारत के लोग**: इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न**: इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजा-महाराजा या विदेशी शासक के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. **पंथ निरपेक्ष**: यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन् इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. **गणराज्य**: इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. **न्याय**: हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है, न कि कुछ केवल विशेष लोगों का कल्याण। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हाशिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. **एकता और अखण्डता**: मूल संविधान में केवल ‘एकता’ शब्द ही था। 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा ‘अखण्डता’ शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के बावजूद एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को

जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 1963 में 16वॉं संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की कुछ विशेषताए निम्नलिखित हैं-

1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग....।'

1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

भारतीय संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 25 भाग, 448 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉं हैं। जबकि संयुनक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधान में कुल 7 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है, जो निम्नलिखित है:-

1. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ-साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

2. भारत की जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक और सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बनी। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आंग्ल भारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

3. नागरिकों के मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ-साथ नीति निदेशक तत्वों और बाद में मूल कर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

4. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग, महालेखा परीक्षक, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध भी संविधान में किया गया है।

1.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत स्वतंत्रत होने के पश्चात किसी बाह्य शक्ति के अधीन नहीं है, वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामलों में निर्णय लेने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान में भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन, 1976, के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से ही विद्यमान था, जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है, राज्य सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

1.4.5 समाजवादी राज्य

मूल संविधान में ‘समाजवाद’ शब्द का प्रावधान नहीं किया था इसका प्रावधान 42वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान देखे जा सकते हैं- कठोर संविधान और लचीला संविधान। कठोर संविधान वह संविधान होता है जिसमें संशोधन कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जब कांग्रेस के दोनो सदन (सेनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह है जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती, वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है-

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन संसद के विशेष बहुमत से किया जा सकता है। अर्थात प्रत्येक सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से और यह बहुमत सदन की कुल संख्या का बहुमत भी होना चाहिए।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाई गयी है। इस प्रणाली की विशेषता-

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉं के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1. केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची- संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

2. इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

3. इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की, जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

4. एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	संघीयतंत्र, लोक सेवा आयोग, आपातकालीन उपबंध, प्रशासनिक विवरण
ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन, विधिका शासन, मंत्रीमंडल प्रणाली
अमरीकी संविधान	मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धांत
आयरलैण्ड का संविधान	नीति निर्देशक तत्व, राष्ट्रपति कीनिर्वाचन पद्दति
कनाडा का संविधान	सशक्त केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था, अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास होना
आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची, संसद के दोनों सदन कीसंयुक्त बैठक
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया, राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन
पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य, प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक न्याय

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए। विशेष रुप से भाग 4 के नीति निर्देशक तत्व में, मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य/असत्य

2. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य/असत्य

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन न किया जा सके। सत्य/असत्य

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित नहीं किया गया है। सत्य/असत्य

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य/असत्य

1.7 सारांश

इकाई 1 के अध्ययन के बाद आपको यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है। जिसमें विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए । जैसे मूल अधिकार और नीति निर्देशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है

इसके साथ–साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ । इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए, जिस कारण उन्होंने भारतीय संविधान में उन्हें शामिल किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई ।

4.8 शब्दावली

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई-2 संविधान की विशेषताएं

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पृष्ठभूमि
2.4 भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

कैबिनेट मिशन योजना के तहत 26 नवंबर 1946 को संविधान सभा द्वारा तैयार और अपनाए गए भारतीय संविधान में कई अनूठी विशेषताएं हैं जो इसे अन्य संविधानों से अलग करती हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने मसौदा समिति के प्रमुख के रूप में कार्य किया। भारतीय संविधान में कुछ तत्व अन्य देशों से प्रेरित हैं, उन्हें भारतीय राजनीति और सरकार के अनुकूल किया गया है। भारत का संविधान विभिन्न विचारधाराओं का प्रतीक है जो इसके सार और उद्देश्य को आकार देते हैं।

पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान की पहचान है, जो सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करने के सिद्धांत पर जोर देती है, जबकि पश्चिम से लिया गया लोकतंत्र देश के शासन की रीढ़ है। एक अन्य प्रमुख विचारधारा सर्वोदय है, जो स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने के लिए विकेंद्रीकरण के साथ-साथ सभी के विकास और कल्याण की वकालत करती है।

भारतीय संविधान मानवतावाद को भी अपनाता है, जो भारतीय विचारधारा की एक अनूठी विशेषता है, जिसमें करुणा और सहानुभूति को महत्व दिया गया है। इसके अलावा, इसमें भारतीय लोकाचार के अनुरूप उदारवाद के तत्वों को शामिल किया गया है, जो एक न्यायपूर्ण समाज के ढांचे के भीतर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है।संविधान आर्थिक नीतियों के प्रति अपने दृष्टिकोण में समाजवादी सिद्धांतों को कायम रखता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा, जो सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों को सह-अस्तित्व की अनुमति देती है, भारतीय विचारधारा की एक प्रमुख विशेषता है, जो देश की आर्थिक संरचना को प्रभावित करती है। इस इकाई के माध्यम से हम भारतीय संविधान की विशेषताओं और मूल्यों को विस्तृत रूप में जानेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1) संविधान की पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर पायेंगें।
2) संविधान की मुख्य विशेषताओं को जान पायेंगें।

2.3 पृष्ठभूमि

26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा औपचारिक रूप से अपनाया गया भारत का संविधान, इसके निर्माताओं की सामूहिक दृष्टि का एक उल्लेखनीय प्रमाण है। विभिन्न वैश्विक संविधानों से प्रेरणा लेते हुए, उन्होंने कुशलतापूर्वक इसके प्रावधानों को भारतीय समाज की विशिष्ट आवश्यकताओं और स्थितियों के अनुरूप तैयार किया। हालाँकि, समय के साथ, मूल संरचना में कई संशोधन हुए हैं, जो राष्ट्र की उभरती गतिशीलता को दर्शाते हैं।

अपनी लंबाई और संपूर्णता से प्रतिष्ठित, भारतीय संविधान की विशाल प्रकृति का श्रेय कई कारकों को दिया जाता है। इनमें से प्रमुख है देश का विशाल विस्तार, साथ ही इसकी जटिल सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक पेचीदगियाँ। इन जटिलताओं के लिए एक व्यापक ढांचे की आवश्यकता थी जो भारत के सामने आने वाली बहुमुखी चुनौतियों को समायोजित और संबोधित कर सके।भारतीय राज्य और उसके राजनीतिक परिदृश्य के सार को सही मायने में समझने के लिए, संविधान को परिभाषित करने वाले मूल तत्वों में गहराई से जाना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रयास में उन प्रमुख विशेषताओं को पहचानना और उनकी सराहना करना शामिल है जो इसे अलग करती हैं। इस चर्चा के दायरे में, हम भारतीय संविधान को परिभाषित करने वाली प्रमुख विशेषताओं का एक संक्षिप्त अवलोकन प्रदान करने का प्रयास करेंगे।

संविधान के निर्माताओं ने विभिन्न वैश्विक संविधानों से सबसे प्रभावी पहलुओं को चुनते हुए, इसके प्रावधानों को सावधानीपूर्वक तैयार किया। इन विदेशी प्रभावों को किसी भी अंतर्निहित कमियों को कम करने और, अधिक महत्वपूर्ण बात, भारत के विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने के साथ संरेखित करने के लिए सोच-समझकर अनुकूलित किया गया था। अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान और स्वदेशी अंतर्दृष्टि के इस सामंजस्यपूर्ण मिश्रण ने एक मजबूत संवैधानिक ढांचे को जन्म दिया है जो देश के अद्वितीय संदर्भ के साथ प्रतिध्वनित होता है।

यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि भारतीय संविधान एक स्थिर इकाई नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में, क्रमिक संशोधनों ने देश की उभरती प्राथमिकताओं के अनुरूप इसकी रूपरेखा तैयार की है। यह अनुकूलनशीलता संविधान की जीवंत प्रकृति को उजागर करती है, जो बदलते समय के सामने इसके लचीलेपन के प्रमाण के रूप में कार्य करती है।

2.4 भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं

किसी राज्य के नागरिकों के व्यवहार को नियमित करने वाले नियमों के समूह को संविधान कहते हैं। संविधान जहाँ कानून के शासन को स्थापित करता है वहीं राजनीतिक स्थिरता को भी बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संविधान की एक खूबी यह भी है कि यह विकसित और अधिनियमित दोनों ही श्रेणियों में शामिल है । यह विकसित संविधान की श्रेणी में आता है क्यूंकि ब्रिटिश काल के दौरान विभिन्न अधिनियम बने जो कि एक विकास यात्रा के परिणाम रहे वहीँ दूसरी तरफ संविधान सभा के द्वारा एक निश्चित कार्यकाल में विभिन्न

अधिनियम अधिनियमित हुए। कैबिनेट मिशन योजना के तहत संविधान सभा का गठन हुआ। दो वर्ष ग्यारह माह अठारह दिन में संविधान सभा द्वारा संविधान को तैयार किया गया. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं विस्तृत रूप से निम्नलिखित है:

1.विश्व का सबसे लम्बा संविधान

भारत का संविधान दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान होने का गौरव रखता है। इसमें एक प्रस्तावना शामिल है, जो 25 भागों में व्यवस्थित 395 लेखों के साथ-साथ दस्तावेज़ के स्वर और उद्देश्य को निर्धारित करती है। इसके अतिरिक्त, इसमें 12 अनुसूचियां और 5 परिशिष्ट शामिल हैं, जो इसे एक व्यापक और विस्तृत ढांचा बनाता है जो देश की राजनीतिक प्रणाली के सार को आकार देता है।

मौलिक कानूनों के भंडार के रूप में, भारतीय संविधान राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति का खाका तैयार करता है और सरकार के विभिन्न अंगों की संरचना और कार्यप्रणाली की रूपरेखा तैयार करता है। यह मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करता है जो देश के शासन को निर्देशित करता है और इसके लोकतांत्रिक संस्थानों के निर्बाध कामकाज को सुनिश्चित करता है।

भारतीय संविधान की व्यापकता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है:

विविध अनुभवों का समावेश: यह दुनिया भर के अग्रणी संविधानों से प्रेरणा लेता है, उनके अनुभवों और सर्वोत्तम प्रथाओं से लाभ उठाता है।

संघ और राज्य संविधान: यह केंद्र सरकार और अलग-अलग राज्यों दोनों के लिए अलग-अलग प्रावधान निर्धारित करता है।

विस्तृत केंद्र-राज्य संबंध: इसमें केंद्र सरकार और राज्यों के बीच संबंधों से संबंधित व्यापक प्रावधान शामिल हैं।

न्यायोचित और गैर-न्यायसंगत अधिकार: यह दोनों न्यायोचित अधिकारों को, जिन्हें कानूनी रूप से लागू किया जा सकता है, और गैर-न्यायसंगत अधिकारों को, जो मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में काम करते हैं, स्थापित करता है।

क्षेत्रीय मुद्दों को संबोधित करना: इसमें विभिन्न क्षेत्रीय चुनौतियों और चिंताओं को दूर करने के लिए विशेष प्रावधान शामिल हैं।

2. कठोरता और लचीलेपन का अनोखा समन्वय

हमारे दैनिक जीवन में, हम पाते हैं कि किसी लिखित दस्तावेज़ में बदलाव लाना आसान नहीं है। जहां तक संविधान कासंबंध है, आम तौर पर लिखित संविधान कठोर होते हैं। इनमें बार-बार बदलाव लाना आसान नहीं है. संविधान संवैधानिक संशोधनों के लिए एक विशेष प्रक्रिया निर्धारित करता है। ब्रिटिश संविधान की तरह अलिखित संविधान में भी सामान्य कानून-निर्माण प्रक्रियाओं के माध्यम से संशोधन किये जाते हैं। ब्रिटिश संविधान एक लचीला संविधान है। अमेरिकी संविधान की तरह लिखित संविधान में भी संशोधन करना बहुत कठिन होता है। इसलिए, अमेरिकी संविधान एक कठोर संविधान है। हालाँकि, भारतीय संविधान न तो ब्रिटिश संविधान जितना लचीला है और न ही अमेरिकी संविधान जितना कठोर है। यह निरंतरता और

परिवर्तन के मूल्य को दर्शाता है। भारत के संविधान में संशोधन के तीन तरीके हैं। इसके कुछ प्रावधानों को संसद में साधारण बहुमत से और कुछ को विशेष बहुमत से संशोधित किया जा सकता है, जबकि कुछ संशोधनों के लिए संसद में विशेष बहुमत और राज्यों की मंजूरी की भी आवश्यकता होती है।

3. विभिन्न स्रोतों से विहित

भारतीय संविधान निस्संदेह विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा लेता है, और जबकि इसकी कुछ विशेषताएं अन्य देशों के संविधानों से प्रभावित हैं, यह भारत की सरकार और राजनीति के साथ संरेखित तत्वों का सावधानीपूर्वक चयन करके अपनी विशिष्टता बनाए रखता है। विशेष रूप से, प्रावधानों की एक महत्वपूर्ण संख्या, भारत सरकार अधिनियम 1935 से ली गई है। डॉ. अम्बेडकर ने इस सन्दर्भ में गर्व से घोषणा की थी कि, "भारत के संविधान का निर्माण विश्व के विभिन्न संविधानों को छानने के बाद किया गया है। संविधान का दार्शनिक भाग (मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत) क्रमशः अमेरिका और आयरलैंड से लिए गए हैं। भारतीय संविधान के राजनीतिक भाग (कैबिनेट सरकार का सिद्धांत और कार्यपालिका और विधायिका के सम्बन्ध) का अधिकांश हिस्सा ब्रिटेन के संविधान से लिया गया है।

भारत के संविधान पर सबसे बड़ा प्रभाव भारत सरकार अधिनियम, 1935 का रहा। इन प्रावधानों में प्रशासनिक विवरण, आपातकालीन प्रावधान, लोक सेवा आयोगों की स्थापना, न्यायपालिका की संरचना, कार्यालय शामिल हैं।

4. मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य:

यह भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिन्हें अक्सर संविधान की "अंतरात्मा" के रूप में जाना जाता है। ये अधिकार नागरिकों के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में काम करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य मनमाने ढंग से और पूरी तरह से सत्ता का उपयोग नहीं कर सकता है। वे व्यक्तियों को कुछ आवश्यक स्वतंत्रता और स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं, न केवल उन्हें राज्य की शक्ति के संभावित दुरुपयोग से बचाते हैं बल्कि साथी नागरिकों द्वारा किसी भी उल्लंघन से भी बचाते हैं। इसके अलावा, संविधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अपनी सुरक्षात्मक पहुंच का विस्तार करता है, यह सुनिश्चित करता है कि बहुसंख्यक शासन के बावजूद भी उनके हितों की रक्षा की जाए।

संविधान के तीसरे भाग में छः मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है. ये अधिकार हैं:

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

5. सांस्कृतिक व शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

हालांकि संविधान इन मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करता है, इसमें मौलिक कर्तव्यों से संबंधित प्रावधान भी शामिल हैं। मौलिक कर्तव्यकानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, लेकिन ये बहुत मूल्यवान हैं क्योंकि ये संविधान में अंतर्निहित मूल सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करते हैं। वे नागरिकों को देशभक्ति, राष्ट्र की विरासत के प्रति सम्मान और समाज के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता जैसे मूल्यों को बनाए रखने के लिए प्रेरित करते हैं।
मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। इन्हें स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश के आधार पर 1976 के 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से आंतरिक आपातकाल (1975-77) के दौरान शामिल किया गया था। 2002 के 86 वें संविधान संशोधन ने एक और मौलिक कर्तव्य को जोड़ा।

5. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत:

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को भारतीय संविधान में एक अभिनव जोड़ के रूप में माना। संविधान के भाग IV में उल्लिखित इन सिद्धांतों को सभी नागरिकों के लिए आर्थिक और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए शामिल किया गया था। उन्हें शामिल करने के पीछे प्राथमिक उद्देश्य भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करना था, जो अपने लोगों की भलाई और प्रगति के लिए प्रतिबद्ध हो। ये निदेशक सिद्धांत संविधान की एक विशिष्ट पहचान के रूप में खड़े हैं, जो राष्ट्र के व्यापक कल्याण और समावेशी विकास के प्रति इसके समर्पण को दर्शाते हैं।
मिनर्वा मिल्स मामले (1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि " भारतीय संविधान की नींव मौलिक अधिकारों और नीति-निदेशक सिद्धांतों के संतुलन पर रखी गई है।

6. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार:

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, भारतीय संविधान की एक मूलभूत विशेषता है जो, लैंगिक समानता पर भी जोर देती है। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि पुरुषों और महिलाओं के पास समान मतदान अधिकार हों, जो समावेशिता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। संविधान कहता है कि नागरिक, लिंग की परवाह किए बिना, 18 वर्ष की आयु तक पहुंचने पर मतदान करने का विशेषाधिकार रखते हैं। इसके अलावा, देश के सभी पंजीकृत मतदाताओं को चुनावी प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त है।

7. अर्ध संघीय स्वरुप:

भारतीय राज्य की प्रकृति को अर्ध-संघीय के रूप में वर्णित किया जा सकता है क्योंकि यह संघवाद और एकात्मक दोनों की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है। जबकि भारतीय संविधान

शुरू में एक संघीय ढांचा स्थापित करता है, जिसमें केंद्र सरकार (संघ) और राज्य सरकारों के बीच शक्तियां वितरित की जाती हैं, आपातकाल के समय में यह एकात्मक चरित्र भी धारण कर सकता है।भारतीय संविधान के संघीय पहलुओं में सरकार के दो समूहों की उपस्थिति शामिल है - एक केंद्रीय स्तर पर और दूसरा राज्य स्तर पर। संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है, प्रत्येक के अपने अधिकार क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त, एक स्वतंत्र न्यायपालिका का अस्तित्व शक्तियों के विभाजन की व्याख्या और सुरक्षा करके संघीय चरित्र को मजबूत करता है। दूसरी ओर भारतीय राज्य में अनेक एकात्मक विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। शब्द "राज्यों का संघ" एक एकात्मक धारणा का सुझाव देता है, जो देश की एकता और एकल इकाई स्थिति पर प्रकाश डालता है। एकल नागरिकता की अवधारणा, जहां प्रत्येक भारतीय नागरिक पूरे देश का नागरिक है, न कि केवल एक विशिष्ट राज्य का, इस एकात्मक पहलू पर और जोर देता है।भारतीय संविधान का एकात्मक चरित्र इसकी एकल एकीकृत न्यायिक और प्रशासनिक प्रणाली में भी स्पष्ट है, जो पूरे देश में एक समान कानूनी संरचना सुनिश्चित करता है। चुनाव, ऑडिट और शासन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं की देखरेख करने वाली एक केंद्रीय मशीनरी है।

8. सरकार का संसदीय रूप:

भारतीय संविधान नेअमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली की बजाय ब्रिटेन की संसदात्मक शासन शासन व्यवस्था को अपनाया। संसदीय व्यवस्था कार्यपालिका और विधायिका के मध्य सहयोग और समन्वय के सिद्धांत पर आधारित है जबकि अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था दोनों के मध्य शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित है. संसदीय प्रणाली को सरकार के “वेस्टमिंस्टर” रूप, उत्तरदायी सरकार और मंत्रिमंडलीय सरकार के नाम से भी जाना जाता है. संविधान केवल केंद्र में ही नहीं बल्कि राज्यों में भी संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है. भारत में संसदीय प्रणाली की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- वास्तविक व नाममात्र की कार्यपालिका
- बहुमत वाले दल की सत्ता
- विधायिका में मंत्रियों की सदस्यता
- विधायिका के समक्ष कार्यपालिका की संयुक्त जवाबदेही
- प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का नेतृत्व
- निचले सदन का विघटन (लोकसभा, विधानसभा)

किसी भी संसदीय व्यवस्था में, चाहे वह भारत की हो अथवा ब्रिटेन की, प्रधानमंत्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है. जैसा कि राजनीति के जानकार इसे “प्रधानमंत्रीय सरकार” का नाम देते हैं।

9. संप्रभुता लोगों में निवास करती है:

भारतीय संविधान में लोकप्रिय संप्रभुता का मूल सिद्धांत केंद्र में है। यह मूल सिद्धांत संविधान के परिचयात्मक खंड में समाहित है, जहां यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संविधान न केवल भारत के लोगों द्वारा अपनाया और अधिनियमित किया गया था, बल्कि गणतंत्र के संरक्षक के रूप में उनकी भूमिका पर भी जोर दिया गया है।लोकप्रिय संप्रभुता की यह अवधारणा इस विचार को रेखांकित करती है कि अंतिम अधिकार और शक्ति स्वयं नागरिकों के हाथों में रहती है। यह सरकार और उसके लोगों के बीच गहरा संबंध स्थापित करता है, यह दावा करते हुए कि देश का शासन उसके नागरिकों की सामूहिक इच्छा और सहमति से निकलता है।

भारतीय संविधान, लोगों को अपने राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले ढाँचे का निर्माता घोषित करके, इसके भाग्य को आकार देने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानता है। यह स्वीकार करता है कि संविधान एक जीवित दस्तावेज है, जो राष्ट्र का निर्माण करने वाली आकांक्षाओं, मूल्यों और विविध पहचानों को प्रतिबिंबित करता है।लोकप्रिय संप्रभुता पर यह जोर यह सुनिश्चित करता है कि लोगों की आवाज़ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के केंद्र में बनी रहे। यह एक निरंतर अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है कि संविधान न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के प्रति लोगों **की** प्रतिबद्धता का प्रतिबिंब है - सिद्धांत जो राष्ट्र को प्रगति और सद्भाव की यात्रा पर मार्गदर्शन करते हैं।

10. स्वतंत्र न्यायपालिका:

संघीय संविधान वाले देशों में विशिष्ट, भारत एक अद्वितीय और एकीकृत न्यायिक प्रणाली का दावा करता है। डॉ. बी.आर. संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ने संविधान सभा में इस विशेषता को उजागर किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि हालांकि भारत का संघ दोहरी राजनीति का प्रतीक है, लेकिन यह दोहरी न्यायपालिका को प्रश्रय न देकर अलग खड़ा है।व्यावहारिक रूप से, यह एक सामंजस्यपूर्ण और एकीकृत न्यायिक ढांचे का अनुवाद करता है जो उच्च न्यायालयों से लेकर न्याय के शिखर, सर्वोच्च न्यायालय तक फैला हुआ है। ये स्तर सामूहिक रूप से एक विलक्षण, निर्बाध इकाई का गठन करते हैं, जो अधिकार क्षेत्र का प्रदर्शन करते हैं और संवैधानिक, नागरिक या आपराधिक कानून के तहत आने वाले मामलों के व्यापक स्पेक्ट्रम पर फैसले देते हैं।

इस एकीकृत दृष्टिकोण के पीछे का तर्क कानूनी उपचारों के दायरे में असमानताओं और विसंगतियों को खत्म करने की आकांक्षा पर आधारित है। एक एकल न्यायिक प्रणाली को कायम रखते हुए, भारत का लक्ष्य उन भिन्नताओं को पार करना है जो संभावित रूप से अलग-अलग संस्थाओं के अस्तित्व से उत्पन्न हो सकती हैं। यह सामंजस्यपूर्ण संरचना संविधान में निहित सिद्धांतों को कायम रखते हुए, कानूनी उपायों के अनुप्रयोग में स्थिरता और समानता सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन की गई है।संक्षेप में, भारत की एकीकृत न्यायिक प्रणाली न्याय की एक समान और निष्पक्ष व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है। उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय को एक एकल ढांचे में एकीकृत करके, भारत कानूनी

कार्यवाही और निर्णयों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है, जिससे एक सामंजस्यपूर्ण और न्यायसंगत कानूनी वातावरण को बढ़ावा मिलता है।

11. आपातकालीन उपबंध:

संविधान के कुछ उपबंधों के सम्बन्ध में संविधान सभा में तीखी बहस हुई थी उसमें से एक आपातकालीन प्रावधान है। संविधान सभा में इन प्रावधानों पर विचार-विमर्श के दौरान बहसें देखने को मिलीं। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने उन्हें शामिल किए जाने का विरोध किया और तर्क दिया कि वे संविधान में निहित अन्य लोकतांत्रिक सिद्धांतों के साथ असंगत लगते हैं। फिर भी, अधिकांश सदस्यों ने उनके समावेशन का समर्थन किया, उन्हें संभावित विघटनकारी ताकतों के खिलाफ एक आवश्यक सुरक्षा के रूप में देखा जो नवोदित संघ को कमजोर कर सकते थे।

संविधान का भाग-XVIII राष्ट्रपति में निहित आपातकालीन शक्तियों का वर्णन करता है। इन प्रावधानों का उद्देश्य भारत संघ की संप्रभुता, स्वतंत्रता और अखंडता के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में काम करना है। इस प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति को तीन अलग-अलग प्रकार की आपात स्थितियों की घोषणा करने का अधिकार दिया गया है:

1. **राष्ट्रीय आपातकाल**: युद्ध, आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से पैदा हुई राष्ट्रीय अशांति की अवस्था (अनुच्छेद-352)।
2. **राज्य में आपातकाल(राष्ट्रपति शासन):** राज्यों में संवैधानिक तंत्र की असफलता (अनुच्छेद 356) या केंद्र के निदेशों का अनुपालन करने में असफलता (अनुच्छेद-365)।
3. **वित्तीय आपातकाल:** भारत की वित्तीय स्थिरता या प्रत्यय संकट में हो (अनुच्छेद 360)।

12. केंद्र-राज्य सम्बन्ध :

भारत एक संघीय राज्य के रूप में कार्य करता है, दिलचस्प बात यह है कि 'संघीय' शब्द का इसके संविधान में उल्लेख नहीं है। इसके बजाय, संविधान कई प्रमुख बिंदुओं को व्यक्त करने के लिए 'राज्यों के संघ' वाक्यांश का उपयोग करता है:भारतीय संघ का गठन संप्रभु इकाइयों के एकजुट होने के समझौते के माध्यम से नहीं किया गया था।देश को अलग-अलग राज्यों में विभाजित करना मुख्य रूप से प्रशासनिक दक्षता के लिए था, जिसमें राज्य की सीमाओं को बदलने का लचीलापन भी था।चूंकि संघ किसी औपचारिक समझौते से नहीं उभरा है, इसलिए किसी भी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है।

संविधान स्पष्ट रूप से संघ और राज्यों दोनों के लिए प्राधिकार के अलग-अलग क्षेत्र निर्दिष्ट करता है। इसे तीन सूचियों में उल्लिखित शक्तियों के विभाजन के माध्यम से प्राप्त किया जाता है: संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। ये सूचियाँ केंद्र और राज्य सरकारों की शक्तियों की गणना करती हैं, यह सुनिश्चित करती हैं कि उनके संचालन के क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित करते

हैं।इसके अलावा, कोई भी अवशिष्ट शक्तियाँ जो इन सूचियों में स्पष्ट रूप से विस्तृत नहीं हैं, केंद्र सरकार में निहित हैं। केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों, कार्यों और प्रभाव क्षेत्रों का यह रणनीतिक वितरण अनिवार्य रूप से उनके सहयोग और बातचीत के विभिन्न क्षेत्रों में उनके संबंधों के बारे में सवाल उठाता है। यह जटिल ढांचा भारत संघ के भीतर संघीय ढांचे और व्यक्तिगत राज्यों की स्वायत्तता के बीच एक सामंजस्यपूर्ण संतुलन स्थापित करना चाहता है।

13. त्रिस्तरीय सरकार:

भारत में शासन की संरचना में त्रि-स्तरीय प्रणाली शामिल है, जैसा कि 73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों द्वारा निर्धारित किया गया है। ये संशोधन शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए स्थानीय निकायों की स्थापना करते हैं, जो सरकार के तीसरे स्तर का गठन करते हैं। ये स्थानीय निकाय देश भर के गांवों में स्वशासन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संशोधन जमीनी स्तर पर समुदायों को सशक्त बनाने, उन्हें अपने मामलों की जिम्मेदारी लेने और भारत के विविध क्षेत्रों के समग्र विकास में योगदान करने में सक्षम बनाने के लिए एक ठोस प्रयास को दर्शाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान के किस भाग में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत शामिल हैं?

(अ) भाग I (ब) भाग II (स) भाग III (द) भाग IV

2. भारत के राष्ट्रपति संविधान के किस अनुच्छेद के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं?

(अ) अनुच्छेद 352 (ब) अनुच्छेद 44 (स) अनुच्छेद 360 (द) अनुच्छेद 356

3. कल्याणकारी राज्य" की अवधारणा भारतीय संविधान में निम्नलिखित के माध्यम से सन्निहित है:

(अ) मौलिक अधिकार (ब) राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (स) कार्यकारी शक्तियाँ (द) प्रस्तावना

4. भारतीय संविधान में "राज्यों का संघ" शब्द का प्रयोग यह दर्शाने के लिए किया जाता है:

(अ) राज्यों का एक स्वैच्छिक संघ (ब) राज्यों का एक संघ

(स) एक संघीय ढांचा (द) एकात्मक सरकार

2.5 सारांश

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं दूरदर्शी सिद्धांतों और व्यावहारिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सामूहिक रूप से देश के लोकतांत्रिक ढांचे को आकार देती हैं। संविधान की

प्रस्तावना उन मूल मूल्यों को समाहित करती है जो भारत के मार्ग का मार्गदर्शन करते हैं, जबकि इसकी संघीय संरचना एक एकीकृत संपूर्णता के भीतर विविध पहचानों का सामंजस्य स्थापित करती है। मौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धांत सामाजिक समानता के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी वकालत करते हैं, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक कल्याण दोनों के प्रति राष्ट्र की प्रतिबद्धता का प्रतीक है।

राज्य के अंग- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका- शक्ति का एक संतुलन सुनिश्चित करती है, जबकि विशेष प्रावधान ऐतिहासिक असंतुलन को संबोधित करते हैं और हाशिए पर रहने वाले वर्गों को सशक्त बनाते हैं। संविधान की अनुकूलनशीलता आपातकालीन शक्तियों के प्रावधानों और संशोधनों के तंत्र में स्पष्ट है, जो संकट के समय में प्रणाली की लचीलापन और बदलती जरूरतों के जवाब में विकास को सुनिश्चित करती है।

इन सबसे ऊपर, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत एक विशिष्ट और प्रगतिशील विशेषता के रूप में उभरते हैं, जो एक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के लिए भारत के समर्पण को रेखांकित करता है जो अपने नागरिकों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की रक्षा करता है। ये विशेषताएं सामूहिक रूप से भारतीय संविधान को देश की आकांक्षाओं के जीवंत प्रमाण के रूप में चित्रित करती हैं, जो विविधता में एकता की भावना और न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की अटूट खोज को दर्शाती है।

2.6 शब्दावली

शक्तियों का पृथक्करण: सरकारी कार्यों का विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शाखाओं में विभाजन।

संसदीय लोकतंत्र: वह प्रणाली जहां कार्यकारी शाखा विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है।

आरक्षण: वंचित वर्गों को अवसर प्रदान करने हेतु सकारात्मक कार्रवाई।

2.7 अभ्याश प्रश्नों के उत्तर

1. द 2. अ 3. ब 4. अ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि- सुभाष कश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

2.भारत का संविधान एक परिचय- डॉ डी. डी. बसु, लेक्सिसनेक्सिस, नागपुर

3.भारत की राजव्यवस्था- एम. लक्ष्मीकांत, मैकग्राहिल पब्लिकेशन

2.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.The Constitution of India A Politico-Legal Study, J.C.Johari- Sterling Publisher, New Delhi

2.Indian Government and Politics- Dr. B.L.Fadia, Sahitya Bhawan

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान में परिकल्पित "संघवाद" की अवधारणा का परीक्षण करें।

2. भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की भूमिका और महत्व का विश्लेषण करें। ये अधिकार किस प्रकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हैं?

3. राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों की व्याख्या करें।

इकाई- 3 मूल अधिकार और मूल कर्तव्य

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मौलिक अधिकार

- 3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण
- 3.3.2 समानता का अधिकार: अनुच्छेद 14-18
- 3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार:अनुच्छेद 19-22
- 3.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार: अनुच्छेद 23-24
- 3.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार:अनुच्छेद 25-28
- 3.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :अनुच्छेद29-30
- 3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

3.4 मूल कर्तव्य

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हमने भारतीय संविधान की विशेषताओं का अध्ययन किया है। अध्ययन के क्रम में, इस इकाई में हम मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह जानकारी भी प्राप्त हो सकेगी कि कितने मौलिक अधिकार है और कितने मौलिक कर्त्तव्य। भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकारों की व्यवस्था करने के पीछे संविधान निर्माताओं की धारणा थी कि स्वतन्त्र देश में भारतवासी नागरिक के रूप में अपना जीवन यापन कर सकें। इस इकाई 3 में हम छः मौलिक अधिकारों का क्रमशः विस्तृत अध्ययन करेंगे तथा मूल कर्त्तव्यों का अध्ययन करेंगे। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि मूल अधिकार के उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाना भी मूल अधिकार है। इसी लिए डॉ0अम्बेडकर इस अधिकार को संविधान की आत्मा कहा है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप जान सकेगें कि-

1) मौलिक अधिकार कितने है।
2) मौलिक अधिकार हमारे लिए मूलभूत क्यों है।
3) किन परिस्थितियों में मूल अधिकारों पर प्रतिबंध लगाये जा सकते है।
4) मौलिक कर्त्तव्य क्या हैं, इन्हें क्यों अपनाया गया और कहाँ से अनुसरण किया गया।

3.3 मौलिक अधिकार

अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ है जिनके अभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मौलिक अधिकार राज्य के विरूद्ध व्यक्ति के अधिकार है ये राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते है मौलिक अधिकारों के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मौलिक अधिकारों को नागरिक अधिकार के रूप में विश्व में सर्व प्रथम ब्रिटेन में दिया गया। इसे सन 1215 में वहाँ के सम्राट सर जान द्वितीय ने दिया, जिसे मैग्ना कार्टा कहा जाता है। भारत ने भी अपने मौलिक अधिकार को भारत का मैग्ना कार्टा बताया।

1689 में सम्राट ने कुछ और अधिकार प्रदान किया जिसे वहाँ का विल ऑफ राइट्स कहा गया। अमेरिका ने भी अपने मौलिक अधिकार को अमेरिका का विल ऑफ राइट्स कहा। चूंकि मौलिक अधिकार लिखित संविधान के अंग होते है और ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के कारण मौलिक अधिकार उस रूप में नहीं है जैसे भारत व अमेरिका को माना जाता है।

1787 में लिखे गए और 1789 से लागू हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के मूल संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं था यह संविधान लागू होने के दो वर्ष बाद 1791 में प्रथम दस संविधान संशोधन के द्वारा अमेरिका में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया। अमेरिका में मौलिक अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रुप में परिभाषित है। प्राकृतिक अधिकार के अर्न्तगत वे सभी अधिकार आ जाते हैं जो किव्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय प्राकृतिक या नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाकर मौलिक अधिकारों को घटा-बढ़ा सकता है। इसलिए अमेरिका की न्यायपलिका विश्व की सबसे शक्तिशाली न्यायपालिका के नाम से जानी जाती है।

भारतीय संविधान के अनु0 12 से लेकर 35 तक में मौलिक अधिकारों का व्यापक विश्लेशण व विवेचन किया गया है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 12 राज्य को परिभाषित करता है। अनु0 13 में मौलिक अधिकार की प्रकृति बतायी गयी है। अनु033 व 34 में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति संसद को प्रदान कीगयी है। अनु0 35 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनु014 से लेकर अनु0 32 तक, जिसमें अनु0 31 को छोड़कर और 21(क) को जोड़कर अर्थात कुल 19 अनुच्छेदों के द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रुप में परिभाषित है अतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों, दोनों को प्रदान किया गया हैं लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रुप में परिभाषित हैं अतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालि का केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है। मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराए जा सकते है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायलय एवं उच्च न्यायलय दोनों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत में राजनितिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। मौलिक अधिकार न तो निरंकुश हैं और न असीमित प्रत्येक अधिकारों पर विभिन्न आधारों पर युक्त-युक्त निर्बन्धन लगाया गया है। कुछ मौलिक अधिकारों को आपातकाल में राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, और संसद कानून बनाकर उसे स्थगित कर सकती है।

मूल संविधान में कुल सात मौलिक अधिकारों का समावेश था लेकिन 44वेंसंविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाकर कानूनी अधिकार बना दिया गया और इसे अनु0 300(क) में रखा गया है और कहा गया है कि संसद विधि बनाकर नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचितकर सकती है लेकिन इसके लिए सरकार को उचित मुआवजा देना होगा।

3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

वर्तमान में केवल 6 मौलिक अधिकार ही है जो कि निम्नलिखित हैः-

1.समानता का अधिकार	अनु0 14 - 18
2.स्वतन्त्रता का अधिकार	अनु0 19-22
3.शोषण के विरूद्ध अधिकार	अनु0 23- 24
4.धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार	अनु0 25-28
5.संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार	अनु0 29-30
6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार	अनु0 32

मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य राज्य और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है।

अनुच्छेद12: इस अनु0 में राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है इसमें कहा गया हैकि यहाँ राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार संद्य विधानमण्डल राज्यों की सरकारें राज्यों के विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र में भारत सरकार के अधीन सभी स्थानीय एवं अन्य प्रधिकारी (शक्ति वैधता) शामिल है। यहाँ स्थानीय के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, जिला बोर्ड, पंचायती राज्य व जिला परिषद आदि आते हैं तथा प्राधिकारी के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम, लोक सेवा

आयोग, विश्वविद्यालय, रेलवे, बैंक, आदि सभी शामिल है। कौन राज्य के अन्तर्गत आता हैं और कौन नहीं आता इसे न्यायपालिका तय करती है जब कोई व्यक्ति मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण में जाता है तो न्यायालय स्पष्ट करता है कि उसे राज्य माना जाए या न माना जाए। न्यायपालिका ने वर्तमान में वैष्णों देवी के मंदिर और अमरनाथ की गुफा कोभी राज्य की संज्ञा प्रदान कि है। उपर्युक्त सभी के विरूद्ध व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13: इससे मौलिक अधिकार के प्रकृति और स्वरूप की विवेचना की गयी है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 13(1) संविधान लागू होने के पूर्व में बनायी गयी विधियाँ यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैं तो वे उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगीं।

अनु0 13(2) संविधान लागू होने के बाद भी राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हो यदि राज्य ऐसी कोई विधि बनाएगा तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13(3) यहाँ विधि शब्द के अन्तर्गत कानून, उपकानून, नियम, उपनियम, आदेश, अध्यादेश, संविदा, समझौता, संन्धि, करार आदि सभी शामिल है।

इस अनु0 में निम्नलिखित दो सिद्धान्त है:-

1.पृथक्करण का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करता है तो केवल वही भाग शून्य घोषित होगा, पूरा कानून नहीं लेकिन उस भाग के निकाल देने से पूरे कानून का कोई अर्थ नहीं रह जाता तो पूरा कानून ही शून्य घोषित हो जाएगा।

2.आच्छादन का सिद्धान्त

यदि पूर्व में बनायी गयी विधियां मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैं तो वे नष्ट नहीं हो जाती बल्कि उन पर मौलिक अधिकारों की छाया आजाती है यदि संशोधन करके उल्लंघन तक वाली विधियां ठीक कर ली जाएं तो वेपुनः जीवित हो जाती है। इसे चन्द्र ग्रहण का सिद्धान्त भी कहते है।

अनु0 13 के अन्तर्गत नयायपालिका को मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है।

3.3.2 समानता का अधिकार: अनुच्छेद 14 से 18

आधुनिक युग में समानता की अवधारणा फ्रांसीसी क्रांन्ति की देन है। भारतीय संविधान के अनु014 से 18 तक में समानता के विभिन्न रूपों कानूनी समानता, सामाजिक समानता, अवसर की समानता आदि का उल्लेख है।

अनुच्छेद 14: भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। इसमें निम्नलिखित दो बाते है-

1) विधि के समक्ष समता यह ब्रिटिश संविधान से गृहित है यह कानूनी समानता का नकारात्मक दृष्टिकोण हैं इससे निम्न 3 अर्थ निकलता है।

i.देश में कानून का राज

ii.देश में सभी व्यक्ति चाहे वे जिस भी जाति, धर्म व भाषा के हों, एक सामान्य कानून के अधीन है।

iii.कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है।

2) विधियों के समान संरक्षण यह अमेरिकी संविधान से गृहीत है। इसका अर्थ यह है कि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा क्योंकि समानता का अर्थ सबकी समानता न होकर समानों में समानता है। अर्थात एक ही प्रकार के योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के साथ जाति, धर्म भाषा व लिंग केआधार पर कोई भेदभाव न किया जाए। भारतीय संविधान विधायिनी वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो कि अनु0 14 का उल्लंघन नहीं करता है। विधायिनी वर्गीकरण का अर्थ है यदि एक व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार अन्य से भिन्न है तो उसे एक वर्ग माना जाएगा और समानता का सिद्धान्त उस पर अकेले लागू होगा लेकिन इसका आधार वैज्ञानिक तर्कसंगत और युक्त होना चाहिए।

1. इसमें नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त निहित है।
2. यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है।
3. इसमें विधि के शासन का उल्लेख है।
4. इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है। 4.इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है।

अनुच्छेद15: इसमे सामाजिक समानता का उल्लेख है इसमें निम्न प्रावधन है।

15(1) राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति लिंग व जन्मस्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15(2) एक नागरिक दूसरे के साथ धर्म, मूल, वंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर दुकानों, होटलों, सार्वजनिक भोजनालयों व सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों तथा राज्य-निधि द्वारा पूर्णतः व अंशतः पोषित हो कूओं, तलाबों, सड़कों वसार्वजनिक समागम के स्थानों पर भी कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15(3) राज्य स्त्रियों और बच्चों को विशेष सुविधाएं दे सकता है, वर्तमान में महिलाओं को दिया गया आरक्षण का आधार यही अनु0 है।

15(4) राज्य सामाजिक व शौक्षणिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को विशेष सुविधाएं दे सकता है। वर्तमान में OBC, SC, ST का आधार यही अनु0 है। वर्तमान में OBC, SC**,** ST का आधार यही अनु0 है।

अनुच्छेद 16:इसमें अवसर की समानता का उल्लेख है। भारत में एकल नागरिकता है इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान के किसी अनु0 में नहीं हैं ।लेकिन इसका विचार अप्रत्यक्ष रूप से इसी में निहित है। इसमें निम्न प्रावधान हैं

अनुच्छेद 16(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्तिया नियोजन पाने के अवसर की समानता होगी।

अनुच्छेद 16(2) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी नागरिक को सरकारी पदों परनियुक्ति या नियोजन पाने में अवसर की समानता से वचिंत नहीं करेगा अर्थातराज्य किसी भी नागरिक को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग जन्म, स्थान उद्भव वनिवास स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर सरकारी पदोंनियुक्ति व नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (3) राज्य निवास स्थान के आधार पर कुछ विशेष पदों पर भर्ती कर सकते हैं लेकिन इसके सन्दर्भ में कानून बनाने का अधिकार उस राज्य को नहीं बल्कि संसद को प्राप्त होगा और संसद इस प्रकार से कानून बनायेगी कि वह अर्हता देशभर में समान रुप से लागू रहेगी।

अनुच्छेद 16(4) यदि राज्यों की राय में सरकारी नौकरियों में सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हैं तो राज्य उन्हें आरक्षण दे सकता है।

वर्तमान में इसी अनु0 के द्वारा O.B.C., S.C.व S.T. को आरक्षण प्रदान किया गया है। ध्यान रहे कि आरक्षण सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को दियाजा सकता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है।

वर्गो को दिया गया आरक्षण उर्ध्वाधर हैं जब कि महिलाओं को दिया गया आरक्षण क्षैतिज है। अर्थात प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने ही वर्ग में आरक्षण की हकदार होगी। उल्लेखनीय है कि

महिलाओं को आरक्षण इस अनु0 के द्वारा नहीं दिया गया हैं क्योंकि प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती। पिछड़े वर्ग को आरक्षण मण्डल रिपोर्ट के आधार पर 27% वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा 1990 में दिया गया। इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय नेस्पष्ट कर दिया था कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती और प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता। इसे प्रभावहीन बनाने के लिए अर्थात SC व ST को प्रोन्नति में आरक्षण देने के लिए 77 वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित करके संविधान में अनु0 16 (4) (क) जोड़ा गया तथा आरक्षण की सीमा 50% से अधिक बढ़ाने के लिए 81 वां संविधान संशोधन अधिनियम लाया गया और 16 (ख) जोड़ा गया।

अनुच्छेद 17: इसमें भी सामाजिक समानता का ही उल्लेख है इसका उद्देश्य जात-पात के भेदभाव को समाप्त करना है। छुआछुत भारत की एक बहुत बड़ी समस्या थी इस अनु0 पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है। इसमें कहा गया है कि अश्पृश्यता का अन्त किया जाता है, इसका प्रत्येक रूप में आचरण निषिद्ध है तथा इसका उल्लघंन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा। इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद ने अश्पृश्यता अपराध उन्मूलन अधिनियम 1955 पारित किया। इसे 1976 में और कठोर बनाते हुए कहा गया कि इसके भेदभाव में दोषी पाए गए व्यक्ति को चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

अनुच्छेद 18: स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न प्रकार की उपाधियां वितरित करके भारत को विषमता मूलक बनाया था अतः भारत में समानता लाने के लिए उपाधियों का अन्त करना आवश्यक था। इसमें निम्न प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य अपने नागरिकों को विद्या या सेना सम्बन्धी सम्मान के सिवाय अन्य कोई उपाधि नहीं देगा। भारत का कोई नागरिक विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। भारत का कोई गैर नागरिक या विदेशी जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

बालाजी राघवन बनाम भारत संघ(1996) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा किअनु018 जन्म आधारित उपाधियों का निषेध करता हैं, लेकिन कर्म आधारित उपाधियों का नहीं- भारत रत्न, पद्म भूषण, पद्मविभूषण व पद्मश्री आदि ऐसी उपाधियां है जो जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है ये विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दी जाती हैं अतः अनु 18 इनका निषेध नहीं करता लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इन उपाधियों का प्रयोग नाम के आगे व पीछे नहीं किया जायेगा। जनता पार्टी सरकार ने 1977 में भारत रत्न आदि जैसी उपाधियों पर रोक लगा दिया लेकिन 24 जनवरी 1980 से इन्दिरा गाँधी सरकारने इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया।

3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार: अनुच्छेद 19 से 22

संविधान में स्वतन्त्रता की अवधारणा फ्रांसीसी क्रांन्ति की देन है। इसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य है। भारतीय संविधान के अनु0 19 से लेकर अनु0 22 तक में स्वतन्त्रता का व्यापक विश्लेशण व विवेचन किया गया है।

अनुच्छेद 19: यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है। यह स्वतन्त्रता केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान की गयी है। अनु019 में वर्णित सभी स्वतन्त्रताएँ सामाजिक है। अनु0 19 में वर्णित स्वतन्त्रता आपातकाल में अनु0 358 के अन्तर्गतस्वतः निलम्बित हो जाती है। अनु0 19(1) क से लेकर अनु0 19(1) छ तक में सात स्वतन्त्रताओं का उल्लेख था लेकिन अनु0 19(1)च में वर्णित सम्पत्ति के अर्जनधारण और व्ययन की स्वतन्त्रता को निकाल देने से वर्तमान में 6 स्वतन्त्रताएँ है। प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनु0 19(2) से लेकर 19 (6) तक द्वारा क्रमशः युक्त 2 निर्बन्धन लगाया गया है। यह निर्बन्धन क्रमशः राष्ट्र की एकता व अखण्डता भारत की सम्प्रभुता सार्वजनिक हित आदि के आधार पर लगाया गया है।

अनु0 19(1)क इसमें भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। प्रेस की स्वतन्त्रता इसी अनु0 में निहित है। अनु0 19(2) के द्वारा निर्बन्धन है।

अनु0 19(1)ख इसमें शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में जलूस निकालने का अधिकार निहित है यह धार्मिक व राजनीतिक दोनों प्रकार का हो सकता हैं। 19(3) द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)ग इसमें संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान हैं इसी में राजनीतिक दल, दबाव समूह तथा सामाजिक व संस्कृतिक संगठन बनाने काविचार निहित है।19(4) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)घ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनु0 19(1)ङ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कहीं आवास बनाने निवास करने व बस जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है ।19(5) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)छ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति, व्यापार, व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु0 19(6) के द्वारा सार्वजनिक हित के आधार पर इस भी प्रतिबन्ध है।

अनुच्छेद 20: इसमें अपराध की दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें निम्न तीन बाते कही गयी है।
अनु0 20(1) अपराध करते समय लागू कानून के अतिरिक्त अन्य किसी कानून से व्यक्ति को सजा नहीं दी जाएगी अर्थात यह कार्योत्तर विधियों से संरक्षण प्रदान करता है।

अनु0 20(2) एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोहरा दण्ड नहीं दिया जाएगा लेकिन यदि अपराध की प्रकृति भिन्न भिन्न है तो व्यक्ति को दोहरा दण्ड दिया जा सकता है अर्थात यह दोहरे दण्ड का निषेध करता है। यह प्रावधान अमेरिका से गृहीत है।

अनु 20(3) किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाहि या साक्ष्य देने के लिए वाध्य नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद21: भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही वंचित करेगा अन्यथा नहीं।ए0 के0गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्वतन्त्रता कार्यपालिका के विरुद्ध नहीं अर्थात विधायिका कानून बनाकर किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विदेश भ्रमण की स्वतन्त्रता को दैहिक स्वतन्त्रता में निहित मौलिक अधिकार मानते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो स्वतन्त्रता अनु0 19 में नहीं है वह दैहिक स्वतन्त्रता में निहित है। उसने प्राण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि इसका अर्थ भौतिक अस्तित्व या पशुवत अस्तित्व से नहीं है बल्कि इसका अर्थ मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीना है। और वे सभी बातें जो किसी व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती हैं अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक अनु0 21 में निहित कई मौलिक अधिकारों की घोषणा कि जिसमें से कुछ निम्न है।

1. निजता का अधिकार
2. हिरासत में मृत्यु के विरुद्ध अधिकार
3. पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा का अधिकार
4. आश्रय प्राप्त करने का अधिकार
5. विदेश जाने का अधिकार
6. जीविकोपार्जन का अधिकार
7. पारिवारिक पेंशन का अधिकार
8.स्वच्छ जल पाने का अधिकार
9. स्वास्थ का अधिकार
10. एकान्त कारावास के विरुद्ध अधिकार
11. प्राथमिक शिक्षा का अधिकार

46वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया। 21(क) राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयुके बच्चों को निःशुल्क

शिक्षा प्रदान करेगा। 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2000 द्वारा संविधान के मूल कर्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खण्ड जोड़ा गया है, क्योकि एक नवीन अनुच्छेद 21(क) जोड़कर 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बच्चों केलिए शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है। 6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के माता पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षको का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हे शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

वस्तुतः संविधान में उल्लेखित मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक उपबन्धों के माध्यम से इनके हनन होने पर संरक्षण की व्यवस्था की गयी है लेकिन मूल कर्तव्यों का पालन न करने पर किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं हैं तथापि भारत के सभी नागरिकों का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है।

अनुच्छेद 22 इसमें बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 22(1) बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को बन्दी बनाए जाने के कारणों से तत्काल अवगत कराना होगा।

अनु0 22(2) बन्दी बनाए गए व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट केसमक्ष उपस्थित करना होगा और बन्दी बनाए जाने का कारण बताना होगा। इसीमें कहा गया है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अपने रुचि या मनपसन्द के वकील से परामर्श लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनु0 22(3) निम्नलिखित दो प्रकार से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता-
क .निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति
ख. शत्रु देश के व्यक्ति पर

(क) निवारक निरोध किसी घटना के घटित होने के पूर्व ऐसी कार्यवाही करना जिससे वह घटना घटित न होने पाए निवारक निरोध कहलाता है। इसके अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर निम्न नियम लागू होता है।

(1) उसे तीन महीने तक बिना कोई कारण बताए जेल में निरूद्ध रखा जा सकता हैं

(2) तीन महिने बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके समकक्ष व्यक्ति की अध्यक्षता में बने एक तीन सदस्यीय परामर्श दात्री बोर्ड के समक्ष उपस्थित करना होगा।

3.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार: अनुच्छेद 23 से 24

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा को बहाल करने के लिए तथा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने के लिए अनु0 23 व 24 को मौलिक अधिकार के रुप में शामिल किया गया यह सरकारी व प्राइवेट दोनों व्यक्तियों के विरुद्ध प्राप्त है।

अनुच्छेद23(1) मनुष्यों के क्रय विक्रय,विशेषकर स्त्रियों व बच्चों के विक्रय पर रोक लगाया जाता है तथा बेगार व बलात श्रम को निषिद्ध घोषित किया जाता है।

अनु0 23(2) राज्य राष्ट्रीय हित में बल पूर्वक कार्य ले सकता है जैसे अनिवार्य सेना में भर्ती का अभियान, ऐसी सेवा में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाती या वर्ग के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद24: 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखानों या संकटमय परियोजनाओं में नहीं लगाया जाएगा।

3.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार: अनुच्छेद 25-28

भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है लेकिन इसकी परिभाषा संविधान के किसी भी अनु0 में नहीं दी गयी है। भारतीय संविधान के अनु0 25 से28 में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारों को व्यापक प्रावधान है । यह अधिकार अल्प संख्यक व बहुसंख्यक दोनों को ही प्राप्त है। स्वास्थ्य, नैतिकता व सुव्यवस्था के आधार पर भी युक्त निर्बन्धन लगाया गया है।

अनुच्छेद 25(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तः करण की स्वतन्त्रता तथा किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने व प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 25(2) लौकिक, राजनैतिक, आर्थिक व वित्तीय आधारों पर उपर्युक्त स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। हिन्दू मन्दिरों को उसके सभी वर्गो के लिए सेवा लेने का आदेश दिया जा सकता है। इसमें सिक्ख धर्म, जैन धर्म व बौद्ध धर्म के लोग भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 26: इसमें धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक कार्यो की पूर्ति या प्रयोजन हेतु किसी भी संस्था की स्थापना करने या पोशण करने का अधिकार प्राप्त है। जगम(चल) व स्थावर(अचल) सम्पत्ति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है। ऐसा प्रशासन विधि के अनुसार होगा।

अनुच्छेद 27: धार्मिक कार्यो हेतु किसी व्यक्ति को कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 28:राज्य निधि द्वारा पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। लेकिन ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनका प्रशासन तो राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या ट्रस्ट के अधीन स्थापित है जिनका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा देना है लेकिन ऐसी संस्थाओं के प्रार्थना सभाओं में किसी व्यक्ति को शामिल होने या न

होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता यदि व अवयस्क हैतो अभिभावक की सहमति से शामिल हो सकता है।

3.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार: अनुच्छेद 29- 30

यह बहुसंख्यको से अल्पसंख्यकों केहितोंकी रक्षा के लिए संविधान निर्माताओं ने संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया यद्यपि संविधान में अल्पसंख्यक की कोई व्याख्या नहीं की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी धार्मिक एवं भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करते हुए उसकी अस्पष्ट परिभाषा से इन्कार कर दिया।

अनुच्छेद 29(1) भारत राज्य क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों की जो भाषा, संस्कृति या लिपि है उसे उन्हें बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(2) धर्म, मूलवंश, भाषा व जाति के आधार पर किसी नागरिक को किसी राज्य द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थामें प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में या भाग के अनुभाग में प्रत्येक धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों को अपने रूचि व मनपसन्द की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने या पोशण करने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 30(2) राज्य किसी संस्था को सरकारी सहायता देते समय इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगी कि यह संस्था किसी भाषा या धर्म पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग के हित में है।

3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

यह स्वंय एक मौलिक अधिकार होते हुए अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। डॉ0 अम्बेडकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान निर्मात्री सभा में कहा यदि कोई मुझसे पूछे कि भारतीय संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद हैजिसे निकाल देने पर संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो मै इस अनुच्छेद के सिवाय अन्य किसी का नाम नहीं लूगाँ।

डॉ0अम्बेडकर ने अनु032 को संविधान का हृदय व आत्मा बताया। अनु032 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय संविधानका संरक्षक हैऔर अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक है।

अनुच्छेद 32 (1) व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है।

अनुच्छेद 32(2) इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश, निर्देश, रिट या प्रलेख जारी कर सकता है। इसी के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है। अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय उसी प्रकार की रिट जारी करके संविधान का अविभावक बन जाता है।

जहाँ अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिट जारी कर सकता है अर्थात उसे विवेकाधिकार की शक्ति प्राप्त है। वहीं पर अनु0 32(2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही रिटें जारी कर सकता है। अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए वह रिट तब जारी करता है जब 139(क) के अन्तर्गत संसद विधि बनाकर उसको ऐसा करने का अधिकार दें।
मूल संविधान में इस बात का प्रावधान था कि जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ हैकेवल उसी व्यक्ति के न्यायालय जाने पर न्यायालय रिट जारी करेगा लेकिन अब जनहितवाद के सिद्धान्त के आ जाने पर ऐसा नहीं रहा।

जनहितवाद का सिद्धान्त भारत ने अमेरिका से लिया है। पीपल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में बैठी संविधान पीठ ने सन 1980 में एक निर्णय दिया जिसे जनहितवाद के नाम से जाना गया। इसमें कहा गया कि यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ है और वह व्यक्ति न्यायालय जाने में समक्ष नहीं है, तो यदि उसका कोई मित्र या रिश्तेदार या शुभ चिन्तक एक पत्र के माध्यम से भी न्यायालय को सूचित करे तो न्यायालय उस पत्र को उसी प्रकार से स्वीकार्य करेगा जैसे रिट पिटीशन स्वीकार की जाती है। बशर्त यह पत्र राजनीतिक भेदभाव और पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो अन्यथा वह व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी होगा।

इस सिद्धान्त के आ जाने से न्यायपालिका ने कार्यपालिका व विधायिका के तमाम कार्यो को अवैध घोषित किया जो कि मौलिक अधिकारों के विरूद्ध थे इस लिए कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता की ओर बढ़ रही है। न्यायिक सक्रियता का संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है, यह न्यायिक पुनरावलोकन का विस्तारित रूप है। न्यायिक सक्रियता का आधार जनहित वाद है।
अनुच्छेद 32(2) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय 5 रिट जारी करता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेशण, अधिकार पृच्छा

- बंदी प्रत्यक्षीकरण/Habeas corpus(सशरीर प्राप्त करना): किसी बंदी व्यक्ति के न्यायलय के समक्ष लाकर उसके गिरफ्तारी का कारण जानना ,यदि कारण वैध नहीं है तो उसे मुक्त करना। यह रिट निवारक नजर्बंदियों पर लागू नहीं होती हैं।
- परमादेश/Mandamus(हम आग्या देते हैं): व्यक्ति अथवा संस्था को कर्तव्य पालन के आदेश दिए जाते हैं (यह आदेश राष्ट्रपति और राज्यपाल को नहीं)।
- प्रतिषेध/Prohibition(मना करना): उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता हैजिसका उद्दश्य अधीन न्यायलय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से रोकना हैं।
- उत्प्रेशण/Certiorari (और अधिक सूचित होना): उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है,जिसमे अधीनस्थ न्यायलय से वहाँ चल रहे

वाद से सम्बंधित कागजात मांगे जाते है। प्रतिषेध रोक के रूप में, उत्प्रेशण उपचार के रूप में समझा जा सकता है।

- अधिकार पृच्छा/Quo-warranto- इस लेख द्वारा न्यायलय किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने वाले को वह कार्य करने से रोकता हैं जिसके वह कानूनी रूप से योग्य नहीं है।

यहाँ हम यह भी सपष्ट करना चाहते हैं कि अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय भी रिट जारी कर सकता है।

अनुच्छेद 33: संसद विधि बनाकर सशस्त्र बलों (अर्द्धसैनिक बल) सेना बलों व पुलिस बलों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है ऐसा इसलिए कि उसमें परस्पर अनुशासन बना रहे जिससे वे अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

अनुच्छेद 34:भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में सेना विधि (मार्शल ला) लागू हैतो संसद कानून बनाकर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकती है।

अनुच्छेद 35:मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद विधि बना सकती हैं इसी अनु0 के अन्तर्गत अश्पृश्यता अपराध अधिनियम जैसे कानून बने।

3.4 मूल कर्तव्य

यदि किसी सभ्य समाज के प्रमुख लक्षणों में एक हैं उसके नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकार, जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है तो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसके नागरिकों के कर्तव्य, क्योंकि सभी के अधिकारों की पूर्ती तभी हो सकती है जब सभी अपने कर्तव्यों के अनुपालन के प्रति भी संवेदनशील हों।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध ही मौलिक कर्तव्यों की याद दिलाता है और जब कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता ग्रहण करता है तो उसे मौलिक कर्तव्यों सम्बन्धी शपथ लेनी पड़ती है। समाजवादी देश कर्तव्यों पर अधिक बल देते है जबकि उदारवादी देश अधिकारों पर अधिक बल देते है।

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था। 42वें अधिनियम के द्वारा संविधान में भाग 4(क) और अनु0 51(क) जोड़ा गया और इसमें 10 मौलिक कर्तव्य रखे गये ये मौलिक कर्तव्य सम्बन्धी निर्णय स्वर्ण सिंह समिति की अध्यक्षता में लिए गए थे। ये पूर्व सोवियत संघ से लिए गये हैं। 86 वें अधिनियम द्वारा 2002 एक और मौलिक कर्तव्य जुड़ जाने से अब इनकी संख्या 11 हो गयी है।

मौलिक कर्तव्य न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं अर्थात न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते इसके बावजूद व्यक्ति के लिए इसका पालन करना अनिवार्य हैइसका उल्लंघन होने पर संसद कानून बनाकर दण्ड निर्धारित कर सकती है। नयी राष्ट्रीय ध्वज आचार संहिता 2002 के द्वारा यह नियम निर्धारित कर दिया गया है कि 15 अगस्त व 26 जनवरी के अलावा अन्य दिवस पर

भी राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सकता है लेकिन वह जमीन और पानी से छूता हुआ नहीं लगना चाहिए।

अनु 51(क) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा-

1) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शो, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

2) स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

3) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसके अक्षुण्ण रखे।

4) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

5) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान मातृत्व की भावना का निमार्ण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।

6) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें।

7) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत बन झील नदी और वन्य जीव हैं रक्षा करे और उसका सबर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।

8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

9) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

10) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊचाइयों को छू ले।

11) माता पिता या संरक्षक, 6 से 14 वर्ष की आयु वाले अपने बच्चे या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अभ्यास प्रश्न

1.मूल संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी थी?

2.वर्तमान समय में मूल अधिकारों की संख्या कितनी है?

3.अनुच्छेद ३००(क) किसका प्रावधान करता है?

4.मूल कर्तव्यों का संविधान में प्रावधान किसकी सिफारिस से किया गया है?

5.मूल कर्तव्यों की संख्या कितनी है?

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा जा सकती है। किन्तु ये अधिकार

असीमित नहीं है। संविधान में मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

3.6 शब्दावली

मौलिक अधिकार - वे अधिकार जो व्यक्तित्व के विकास में मूलभूत होते है। जिनके बिना विकास नहीं हो सकता।

निवारक निरोध - भविष्य में अपराध करने की आशंका से किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी जिससे अपराध को रोका जा सके निवारक निरोध कहलाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1- 7; 2- 6; 3- संपत्ति का कानूनी अधिकार; 4-स्वर्ण सिंह समिति के सिफारिश के आधार पर; 5-11

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम० (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी०एच० आई० लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी०डी० (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ० पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ० वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं? स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या कीजिये।

2.संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार की विवेचना कीजिये।

इकाई- 4 राज्य के नीति निदेशक तत्व

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 नीति निदेशक तत्व
4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निदेशक तत्व में अन्तर
4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 3 के अध्ययन के उपरान्त हम जान सके कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा की जा सकती है। किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

इस इकाई में हम संविधान के भाग 4 में उपबंधित राज्य के नीति निदेशक तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से इन निदेशक तत्वों के माध्यम से एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। यद्यपि ये निदेशक तत्व न्यायलय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। लेकिन हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि देश में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है जिसमें सरकार की जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायित्व होता है। ऐसी स्थिति में इन निदेशक तत्वों कि अनदेखी कोई भी सरकार नहीं कर सकती हैं। इन्ही पक्षों का हम अध्ययन हम इकाई के अंतर्गत करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1) जान सकेगें कि नीति निदेशक तत्वों को क्यों संविधान में उपबन्ध किया।
2) समझ सकेगें कि किन निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन हुआ, उसके परिणाम क्या रहें
3) जान सकेगें कि इसमें कल्याणकरी राज्य की अभिव्यक्ति कैसे होती है।
4) हम जान सकेगें कि मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में क्या सम्बन्ध है।

4.3 नीति निदेशक तत्व

राज्य की नीतियां क्या होनी चाहिए और कैसी होनी चाहिए इसी को बताने वाले तत्व का नाम नीति निर्देशक तत्व है अर्थात नीति निर्देशक तत्व वे आदर्श है जिनके आधार पर राज्य अपनी नीतियां तय करते हैं। नीति निर्देशक तत्व का उद्देश्य भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है। संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व को संविधान की आत्मा के रूप में देखा था। मौलिक अधिकारों का उद्देश्य एक स्वतन्त्र एवं समता मूलक समाज की स्थापना करना है, जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना है तथा ऐसी वाह्य परिस्थितियों का सृजन कर सके। मौलिक अधिकार एक साधन हैं और नीति निदेर्शक तत्व एक लक्ष्य।

भारतीय संविधान के भाग 4 में अनु036 से लेकर अनु051 तक में नीति निर्देशक तत्वों का व्यापक प्रावधान किया गया है। अनु0 36 व 37 नीति निर्देशक तत्व की प्रकृति बताते है। अनु0 38 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख है अर्थात मूल संविधान में इसका उल्लेख कुल 14 अनुच्छेद में था। 42वें अधिनियम द्वारा अनु0 39(क) अनु 43 (क) और 48 (क) जुड़ जाने से अब कुल 17 अनुच्छेद हो गए हैं। संविधान की प्रस्तावना में निहित आदर्शो अर्थात सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय को इसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं साकार रुप से प्राप्त किया जा सकता है।

नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है। अर्थात ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। इसे लागू करना देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों पर निर्भर हैजैसे देश में भौतिक संसाधन बढ़ते जाएगें राज्य उसे अपनी नीति का हिस्सा बनाता जाएगा। नीति निर्देशक तत्वों को पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है। संविधान निर्मात्री सभा में नीति निर्देशक तत्व पर बहस के दौरान इसकी आलोचना करते हुए कुछ लोगों ने इसे धार्मिक उपदेश या नैतिक शिक्षा बताया। टी. कृष्णमाचारी ने इसे सच्ची भावनाओं का कूड़ादान बताया के.टी. शाह के अनुसार नीति निर्देशक तत्व एक ऐसे चेक की भाँति है जिसका भुकतान बैंक की सुविधा पर निर्भर है।

डॉ0 अम्बेडकर ने उपर्युक्त आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि भले नीति निर्देशक तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं हैंलेकिन इसके पीछे सबसे बड़ी शक्ति जनमत की है और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाये संविधान लागू होने से लेकर आज तक सरकार ने इसे हर सम्भव से लागू कराने का प्रयास किया हैं इसके बावजूद अधिकांश नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा हुई है।
नोट - नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक आदेश है जो कि राज्य को कुछ कार्य करने का आदेश देते है।

अनुच्छेद 36: इसमें राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है और कहा गया है कि यहाँ राज्य शब्द का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद 37 यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं इसके बावजूद वे देश के शासन में मूलभूत हैऔर राज्य का यह कर्तव्य हैकि वह अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्ही तत्वों के आधार पर बनाए।

उपर्युक्त बातों से निम्न 2 अर्थ निकलता है-

1.ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते।

2.यहां कर्तव्य इच्छा का नहीं बल्कि अनिवार्यता का प्रतीक है।

अनुच्छेद 38: इसका उद्देश्य भारत में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है इसमें लोक कल्याणकारी राज्य का विचार निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनुच्छेद 38 (1) राज्य लोककल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएगा जिसमें देश के सभी नागरिकों के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

अनुच्छेद 38(2) राज्य सामान्यतः आय की असमानता को कम करने विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए वर्गो व समूहों के बीच प्रतिष्ठा सुविधाओं व अवसर की असमानता को भी कम करने का प्रयास करेगी।

इसे 44 वें अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य भारत में समाजवाद लाना है इस पर जय प्रकाश नारायण का पूर्ण प्रभाव है।

अनुच्छेद 39: इसके द्वारा भारत में आर्थिक लोकतन्त्र है कि राज्य अपनी आर्थिक नीतियों का निर्धारण निम्न प्रकार से करेगा।

अनुच्छेद 39(a) पुरूषों और स्त्रियों अर्थात सभी कर्मकारों को अपनी जीविका प्राप्त करने का पर्याप्त साधन मिल सके।

अनुच्छेद 39(b) देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बटा होना चाहिए कि वह समुदाय के पर्याप्त हित का साधन बन सके।

अनुच्छेद 39(c) देश की आर्थिक नीतियों का संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसका एक स्थान पर अहितकारी संकेन्द्र न होने पाए।

अनुच्छेद 39(d) पुरुषों और स्त्रीयों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

अनुच्छेद 39(e) पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वस्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश हो करना गरिकों को ऐसे रोज़गार में न जाना पड़े जो उनकी युवा शक्ति के अनुकूल न हो।

अनुच्छेद 39(f) सुकुमार बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए गरिमामय वातावरण का सृजन किया जाए तथा सुकुमार बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा की जाए।

अनुच्छेद 39(A) इसमें समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया है। दूसरे शब्दों में राज्य का विधिक तन्त्र इस प्रकार से कार्य करेगा कि देश के सभी नागरिकों को समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो सके। किसी को भी आर्थिक अयोग्यता या अन्य कारण से इससे वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 40 राज्य पंचायतों का संगठन करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार देगा जिसमें वे एक स्वायत्व शासन की इकाई की दिशा में विकसित हो सके।
इस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव हैइसे 73 वें व 74 वें अधिनियम के द्वारा संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दिया गया लेकिन अभी भी पंचायतें स्वायत्त संस्था के रूप में विकसित नहीं हो सकीं हैं। वेआर्थिक रूप से विपन्न हैंपंचायते भी राज नीति का अखाड़ा बनती जा रहीं हैं। अज्ञानता और अशिक्षा पंचायती राज के विकास में बाधक है।

अनुच्छेद 41 राज्य विकास एवं क्षमता की सीमा भीतर कुछ मामलों में काम पाने, शिक्षा पाने बेकारी अंगहानि तथा इसी प्रकार की अन्य अयोग्यता होने पर राज्य उसे दूर करने का प्रयास करेगा। इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में डवा आगनबाड़ी, प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान, आपरेशन बोर्ड योजना, राष्ट्रीय एड्स नीति विकलांगों को छात्रवृति एवं रिक्शा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्यक्रम चलाए।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्यायसंगत तथा मान्योचित दशा में सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा प्रसूति सहायता उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 43 राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मचारियों के उचित वेतन शिष्ट जीवन स्तर काम के घन्टे आदि को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा तथा इसी में कहा गया है। राज्य ग्रामीण कुटीर उद्योगों को सहकारी एवं व्यक्ति प्रोत्साहन भी देगा।
अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों के भाग लेने व्यवस्था का प्रावधान। इसे 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 44 इसमें कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार संहिता होनी चाहिए। धर्म निरपेक्षता को व्यवहारिक रूप देने के लिए इसे संविधान में शामिल किया गया हैं लेकिन राजनीतिक कारणों से इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका। हिन्दूओं के लिए हिन्दू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम व दहेज निषेध जैसे कानून बने हैं। लेकिन मुसलमानों के लिए ऐसा कोई कानून नहींहैं साहबानों के केस में न्यायालय ने इसे लागू कराने की बात कही थी राजीव गांधी ने 1986 में ऐसा कानून बनवाया भी था लेकिन मुसलमानों के व्यापक विरोध के कारण सरकार ने इसे समाप्त कर दिया। भारत सरकार ने तीन तलाक निषेध क़ानून पारित कर मुस्लिम महिलाओं के लिए गरिमामय जीवन के की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है।

अनुच्छेद 45: 86वें अधिनियम के द्वारा इसे संशोधित किया गया,'राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा' इसे मौलिक अधिकार बनाकर 21(क) में रख दिया गया है और इसके स्थान पर 'राज्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चो के स्वास्थ एवं शिक्षा परविशेषध्यान देगा' जोड़ा गया है।

अनुच्छेद 46 राज्य के कमजोर वर्गो विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनूसूचित जनजातियों के आर्थिक एवं शैक्षिक हितों को बढ़ावा देगा तथा समाज के शोषण और अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।
इस पर डॉ0 अम्बेडकर का प्रभाव है इसे क्रियान्वित करने के लिए SCव ST को निःशुल्क कोचिंग संस्थान छात्रवृत्ति प्रतियोगी परिक्षाओं के फार्म में भारी छूट तथा हरिजन एक्ट जैसे कानून का प्रावधान किया गया है।
अनुच्छेद 47 राज्य लोगों के पोषाहार स्तर व जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा औशधीय प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औशधि को छोड़कर शेश मादक एवं पेय पदार्थो पर प्रतिबन्ध लगायेगा। इसे राजनीतिक कारणों से अभी तक लागू नहीं किया जा सका।

अनुच्छेद 48 राज्य कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से बढ़ावा देगा तथा गायों बछड़ों दुधारू पशुओं वाहक पशुओं के नस्लों को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा इनके बध आदि पर प्रतिबन्ध लगायेगा।
इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में हरित क्रांन्ति पीली क्रांन्ति, नीली क्रान्ति राष्ट्रीय कृषि नीति जैव प्रौद्योगिकी नीति सुधार कार्यक्रम, कृषि विश्व विद्यालयों की स्थापना तथा नये किस्म के बीज एवं खाद्य का निमार्ण आदि हुआ। कई राज्यों ने गोवध आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून भी बनाए।
अनुच्छेद 48(क) राज्य पर्यावरण का संरक्षण एवं संबर्धन करेगा। तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करेगा। इसको क्रियान्वित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा राष्ट्रीय वन्य नीति जैसे कानून बनाये गए।

अनुच्छेद 49 राज्य संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक कलात्मक वस्तुओं और ऐतिहासिक घरोहरों की लुन्ठन विरूपण एवं विकृति से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 50 इसमें कहा गया है कि कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच कार्यो में पृथक्करण होगा। आज भी इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका प्रायः यह देखा जाता है कि कार्यपालिका के बहुत से ऐसे कार्य हैंजो न्यायपालिका करती नजर और आती है और न्यायपालिका के कार्य कार्यपालिका करती नजर आती है।

अनुच्छेद 51 राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से निपटाएगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय संन्धि कानूनों एवं वाध्यताओं का पालन करेगा।
इस पर पं0 नेहरू का प्रभाव है इसमें भारत की विदेश नीति का उल्लेख है । इसे लागू करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी पंचशील समझौता किया । संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था व्यक्त किया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया और निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया।

4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर

1.मौलिक अधिकार राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात ये राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते हैं जबकि नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक है अर्थात राज्य को कुछ कार्य करने के लिए आदेश देते है।
2.मौलिक अधिकार न्याय योग्य हैं अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।
3.मौलिक अधिकार निरंकुश व सीमित है इन पर आपात काल में प्रतिबन्ध लगया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व निरकुश और असीमित हैं इन पर कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता।
4.मौलिक अधिकारों का स्वरूप केवल राष्ट्रीय है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का स्वरूप राष्ट्रीय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भी है।

4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व

मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व के बीच विवाद सर्वप्रथम चम्पाकम दोराई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सन 1951 में आया इस मामले में न्यायालय ने कहा मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्वों के साथ ऐसी कोई बात नहीं है इसलिए मौलिक अधिकार को नीति निर्देशक तत्व पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लगभग यही बात केदार सिंह बनाम विहार राज्य व सज्जन कुमार बनाम राजस्थान राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा।

गोलकानाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। यह निर्णय 9 न्यायाधीशों की संविधान ने 5:4 के बहुमत ये दिया था।

1971 में संसद ने 24 वां 25वां अधिनियम पारित किया। 24 अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि संसद को अनु0 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों संहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त हैं और 25 वें अधिनियम द्वारा संविधान में अनु0 31

(ग) जोड़ते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि अनु0 39 (b) और 39(c) को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 24वें व 25 वे अधिनियम पर सुनवायी करते हुए दोनों को वैध ठहराया लेकिन 24 वें के सन्दर्भ में कहा कि वह संविधान के मूल ढ़ाचे को नष्ट न करता हो। पहली बार सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढ़ाचे शब्द का प्रतिवादन किया संविधान का मूल ढ़ाचा का आधार न्यायिक र्निवचन है। केशवानन्द भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ 13 न्यायाधीशों की बैठी थी जिसमें 7:6 के अनुपात से निर्णय हुआ।

1976 में 42 वां अधिनियम पारित किया गया जिसमें कहा गया कि अनु0 368 के अन्तर्गत संशोधनका असीमित अधिकार है। इसकी संवैधानिक वैधता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती तथा ये कहा कि सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

42 वें अधिनियम पर सुनवायी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980 के मामले मे 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें कहा गया था कि इसकी वैधता को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का मूल ढ़ाँचा है और 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। 25 वे अधिनियम को वैध ठहराते हुए केवल अनु0 39(b) और अनु0 39(c) को ही मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता बताया।

अभ्यास प्रश्न

1.राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। यह प्रावधान किस अनुच्छेद में है?

2.भारतीय संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है?

3.सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है किस अनुच्छेद में है?

4. समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किस अनुच्छेद में किया गया है?

5.पंचायतों के गठन का निर्देश किस अनुच्छेद में किया गया है?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में हमने यह पाया है कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निर्देशक तत्व का प्रावधान किया है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके है हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात सरकार के द्वारा इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायलय में नहीं जा सकते है। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश में संसदीय शाशन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है और नीयमकालीन चुनाव में पुनः जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए। इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए है उनकी अनदेखी सरकार नहीं करी सकती है। जैसा कि पंचायतो का गठन और महिलाओं ओर बच्चो तथा समाज के पिछड़े वर्गों के लिए भी नीतियां बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि नयायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं है परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

4.5 शब्दावली

कल्याणकारी राज्य - जिस राज्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को वे सुविधांए प्रदान की जाती है, जिन्हें समक्ष लोग स्वयं प्राप्त करते है।

सामाजिक न्याय - समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले को प्राथमिकता के आधार पर बिना की जाति धर्म के भेद भाव किये आवश्यक सेवाए प्रदान करना है।

4.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.अनुच्छेद 51, 2. भाग-4 , 3. अनुच्छेद 39(d) 4.अनुच्छेद 39 5.अनुच्छेद 40

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम० (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी०एच० आई० लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी०डी० (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

4.मंगलानी,डॉ.रूपा – भारतीय शासन और राजनीति

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ॰ पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ॰ वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नीति निर्देशक तत्व राज्य को कल्याण कारी राज्य बनाने लिए किया गया भागीरथ प्रयास है। स्पष्ट कीजिये

2. नीति निर्देशक तत्व और मौलिक अधिकारों में अंतर करते हुए, भारत में इनके महत्व की विवेचना कीजिये।

इकाई- 5 भारतीय संघ का स्वरुप

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं

5.3.1 केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

5.3.2 लिखित निर्मित और कठोर संविधान

5.3.3 स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

5. 4 भारतीय राजव्यवस्था में एकात्मक तत्व

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय राजव्यवस्था के अध्ययन के क्रम में सबसे महत्वपूर्ण विषय वस्तु में शासन व्यवस्था के रूप में अपनाए जाने वाले संघात्मक व्यवस्था है। इस संदर्भ में देश और विदेश के राजनीति विज्ञान के मर्मज्ञ के मात भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी यहां इस बात को स्पष्ट रूप से उल्लिखित करना आवश्यक है कि संविधान सभा में लंबी बहस के उपरांत संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने पर बल दिया गया। जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि- इंडिया अर्थात भारत, राज्यों का संघ होगा। भारतीय संविधान में कहीं पर भी फेडरेशन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके स्थान पर ‘यूनियन आफ स्टेट्स’ शब्द का प्रयोग किया गया है डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने इस पर अपनी टिप्पणी करते हुए कहा था कि “यद्यपि संविधान की संरचना संघात्मक है किंतु समिति ने राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि इसके कुछ लाभ हैं। राज्यों का संघ अर्थात भारत इकाइयों के बीच करार का परिणाम नहीं है, साथ ही यह किसी इकाई को भारत से अलग होने का अधिकार प्रदान नहीं करता है।

भारतीय राजव्यवस्था के अध्ययन के क्रम में हम पाते हैं कि एक तरफ इसमें ऐसे प्रावधान मिलते हैं जो संघात्मक शासन व्यवस्था की मूल विशेषताओं को प्रकट करते हैं वहीं दूसरी तरफ एकात्मक शासन की मूल तत्वों को प्रकट करने वाले विषय भी भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाते हैं | इस बात को लेकर के विद्वानों में बहुत ही मतभेद रहता है ।कुछ ने इसे एक ऐसा संघ जिसका झुकाव एकात्मकता की तरफ है, कहा है। किसी ने एकात्मक और संघात्मक के मिश्रण के रूप में भारतीय संविधान को संबोधित करने का कार्य किया है।

संविधान सभा के सदस्य डॉ देशमुख ने कहा था भारतीय संघ न तो संघात्मक है और न ही एकात्मक। के.सी व्हीयर का मत भी उल्लेखनीय है उन्होंने कहा कि ‘भारतीय संघ अधिक से अधिक अर्थ संघ है’। अंत में संविधान के संघात्मक स्वरूप के संदर्भ में संविधान सभा की प्रारूप समिति प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ अंबेडकर का कथन अत्यंत प्रासंगिक है जो इस प्रकार है- भारतीय संविधान को संघात्मक बताते हुए स्पष्ट किया था कि “यह एक संघीय संविधान है। केंद्र तथा राज्य दोनों का गठन संविधान द्वारा हुआ है और दोनों की शक्ति और प्राधिकार का स्रोत संविधान है ।अपने क्षेत्राधिकार में कोई किसी के अधीन नहीं है, एक का प्राधिकार दूसरे का पूरक है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय संघ के स्वरूप के अध्ययन के क्रम में

1. भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाने वाले मुख्य संघात्मक तत्वों का अध्ययन करेंगे।
2. भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाने वाले एकात्मक तत्वों का अध्ययन करेंगे।
3. यह अध्ययन करेंगें कि संघात्मक शासन अपनाने के साथ वह कौन से कारण व लक्षण हैं जिसकी वजह से एकात्मक शासन को अपनाने का भी कार्य किया गया।

5.3 संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं

सामान्य स्थिति में भारतीय राजव्यवस्था संघात्मक रूप से परिचालित होती है। भारतीय संघ की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित विन्दुओं में करेंगे। संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है

1.केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

2.लिखित निर्मित और कठोर संविधान अर्थात संविधान की सर्वोच्चता

3.स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

5.3.1 केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

जैसा कि हमने कहा कि भारत में संघात्मक शासन के अपनाने के कारण यह है कि भारत में बहुत सी विविधता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने पर जोर दिया गया, क्योंकि संघात्मक शासन प्रणाली में एक लिखित निर्मित और कठोर संविधान के द्वारा केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है ।केंद्र सरकार अपने विषय क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक संविधान की मर्यादा में रहते हुए कार्य करती है तथा राज्य सरकार भी उसी को आवंटित विषयों की सीमा तक स्वतंत्रता पूर्वक संवैधानिक मर्यादा में रहते हुए अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। इस प्रकार से सामान्य स्थिति में सामान्य परिस्थिति में केंद्र और राज्य सरकारें दोनों अपने विषय क्षेत्र में संविधान के द्वारा निर्धारित सीमा के अंतर्गत स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्य दायित्व का निर्वहन करती है ।इसेस एक बात और स्पष्ट हो जाती है की संघात्मक शासन में दोहरी शासन प्रणाली पाई जाती है अर्थात केंद्र के शासन और विभिन्न इकाइयों का शासन जो कि हमारे देश में विद्यमान है अर्थात संघीय स्तर पर भारत सरकार का शासन और इकाई स्तर पर विभिन्न प्रांतों की सरकार है जो अपने अपने क्षेत्र में संविधान के द्वारा प्राप्त अधिकारों की सीमा में रहते हुए अपने दायित्वों का निर्माण करती हैं।

शक्ति विभाजन के सिद्धांत के अनुसरण में तीन सूचियों का उल्लेख किया गया है। संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। इसके अतिरिक्त एक अवशिष्ट शक्तियों की बात की गई है। संघ सूची पर कानून बनाने का और उससे प्रशासन करने का अधिकार संघ सरकार को और राज्य सूची के विषयों पर विधायन और उस पर प्रशासन करने का अधिकार राज्य सरकार को । समवर्ती सूची पर राज्य और केंद्र सरकार दोनों को कानून बनाने का अधिकार है परंतु विवाद की स्थिति में अर्थात संघ द्वारा बनाए गए कानून और राज्य द्वारा बनाए गए कानून में विवाद उत्पन्न होने की स्थिति में संघ के द्वारा बनाए गए कानून निर्णायक होते हैं ।इसके अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियों की बात की गई है यहां पर भारतीय संविधान निर्माताओं ने कनाडा के संविधान का अनुसरण करते हुए अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को प्रदान किए ।जबकि संघात्मक शासन के एक आदर्श मॉडल के रूप में अमेरिका को जानते हैं। वहां पर विशेष शक्तियां राज्यों को प्रदान की गई हैं। इस प्रकार से दिखाई देता है कि संघ और राज्य के बीच के शक्ति विभाजन में झुकाव केंद्र की तरफ है अर्थात केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाने का यत्न किया गया है।

5.3.2 लिखित निर्मित और कठोर संविधान

संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषताएं कि इसमें संविधान के सर्वोच्चता के सिद्धांत का पालन किया जाता है अर्थात शासन के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी को संविधान के द्वारा शक्ति प्राप्त होती हैं तथा इस प्रकार के विस्तृत प्रावधान किए जाते हैं जिससे शासन के अंगों के बीच मतभेद और अंतर्विरोध की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सके क्योंकि भारतीय समाज में बहुत सारी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि की भिन्नता पाई जाती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सभी पक्षों को शामिल करने का प्रयास भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान में किया गया है अर्थात भारत की विविधता को भारतीय संविधान के द्वारा समायोजित करने की कोशिश की गई है ,कोशिश ही नहीं बल्कि सफल कोशिश की गई । इसके कारण से भारत का संविधान दुनियाँ का सर्वाधिक विस्तृत संविधान है भारत का संविधान न तो बहुत ही कठोर है जैसा कि अमेरिका का संविधान और ना ही बहुत ही सरल है जैसा कि ब्रिटिश संविधान । इस प्रकार से भारत के संविधान निर्माताओं ने इस बात की कोशिश की है की आवश्यकता अनुसार भारत की संसद के द्वारा संविधान में संशोधन की जाए तथा इसके साथ इस बात की भी कोशिश की गई है कि सामान्य बहुमत का लाभ उठाते हुए कोई सरकार संविधान की भावना के विपरीत मूलभूत ढांचे को समाप्त करने की हद तक परिवर्तन करने की स्थिति में न रहे।

इसलिए बहुत सारे ऐसे प्रावधान जो संघात्मक व्यवस्था से संबंधित तथा इस प्रकार से अन्य व्यवस्थाएं हैं जिसके संदर्भ में बड़ी कठोरता के साथ परिवर्तन का अधिकार संविधान निर्माताओं ने संसद को प्रदान किया है । इस प्रकार से भारतीय संविधान निर्माताओं ने कठोर संविधान और लचीले संविधान के बीच के मार्ग को अपनाया है

5.3.3 स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

संघात्मक शासन में केंद्र और राज्य के शासन की स्थापना एक लिखित निर्मित और कठोर संविधान के द्वारा की जाती है जिसमें केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है तथा अवशिष्ट शक्तियां कुछ जैसे अमेरिका में राज्यों को है और कनाडा का अनुसरण करते हुए भारत में संघ के पास है ।परंतु देश समय के साथ नए नए विषय उत्पन्न होते हैं उन विषयों के संदर्भ में विषयक्षेत्र के विवाद तथा केंद्र -राज्य के मध्य किसी भी प्रकार के विवाद राज्य राज्यों के मध्य विषय क्षेत्र या अन्य किसी भी विवाद तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए संघात्मक शासन का अनुसरण करते हुए भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक स्वतंत्र निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की है ,जो व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के कार्यों का परीक्षण संविधान में उल्लिखित उपबंधों के आधार पर करती है और यदि वह संविधान में उल्लिखित उपबंधों के विपरीत पाती है तो उन्हें अधिमान्य घोषित करते हुए निरस्त घोषित करती है तथा उनके अनुकूल पाते हुए उनकी व्यवस्था की घोषणा करती है । इस प्रकार से संविधान के संरक्षक के रूप में भारत में न्यायपालिका संघात्मक शासन की भावना के अनुरूप

अपना कार्य करती है। न्यापालिका के संदर्भ में भी अगर भारत की न्यायपालिका का ढांचा देखा जाए तो निश्चित रूप से यह भी एक एकात्मक तत्व या एकात्मक झुकाव लिए हुए हैं क्योंकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी भारत के राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है भारत के न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालय एकीकृत है।

भारतीय राजव्यवस्था में कुछ अन्य विशेषताएं पाई जाती हैं जैसे संघात्मक शासन में जो संघीय संसद होती है उसमें राज्यों के प्रतिनिधित्व करने वाला सदन भी पाया जाता है । जैसा कि अमेरिका में सीनेट है उसी प्रकार से भारत की संसद में उच्च सदन अर्थात राज्यसभा राज्यों का सदन है इस प्रकार से यह संघात्मक शासन की भावना के अनुरूप है। यद्यपि इन में समानता का सिद्धांत का पालन न करके यह इनको प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है। इसी के साथ-साथ भारतीय संविधान में संविधान संशोधन की जो प्रणाली है वह भी निश्चित रूप से काफी हद तक संघात्मक शासन के सिद्धांतों और उसकी विशेषताओं के अनुरूप है क्योंकि भारतीय संविधान में संघात्मक ढांचे से संबंधित जो कुछ भी उपबंध है उसमें संशोधन के लिए नितांत आवश्यक है कि संसद के पारित होने के उपरांत कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों की स्वीकृति भी उस पर आवश्यक है, तभी वह राष्ट्रपति के पास उनकी अनुमति उनकी सहमति, उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है ।इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारतीय संविधान में भारतीय राजव्यवस्था में वह सभी तत्व पाए जाते हैं जो संघात्मक शासन की मूल विशेषताओं के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं

5. 4 भारतीय राजव्यवस्था में एकात्मक तत्व

1.शक्तियों के वितरण में केंद्र का मजबूत होना

जैसा कि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन में यह विभाजन केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाता है क्योंकि केंद्र को राष्ट्रीय महत्व के विषय पर कानून बनाने का अधिकार है तथा समवर्ती सूची पर केंद्र के द्वारा बनाए गए कानून निर्णायक होते हैं और अवशिष्ट शक्तियां भी केंद्र को प्रदान की गई। इसके साथ-साथ कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी केंद्र को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शक्ति विभाजन के सिद्धांत का अनुसरण तो किया गया है लेकिन एक शक्तिशाली केंद्र के निर्माण का प्रयास भी किया गया है।

इस संदर्भ में डॉक्टर बी .आर. अंबेडकर का एक कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है उन्होंने कहा था कि मैं 1935 के अधिनियम के द्वारा स्थापित केंद्र से भी अधिक शक्तिशाली केंद्र की स्थापना के पक्ष में हूं।

2.नए राज्यों के निर्माण तथा वर्तमान राज्यों के सीमा क्षेत्रों और नाम में परिवर्तन करने की शक्ति संसद के पास होना

भारत के संविधान के अनुच्छेद 1 से अनुच्छेद 4 तक में इस संदर्भ में विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि भारत के संसद दो या दो से अधिक राज्यों या उनके राज्यों राज्यों के कुछ भागों को मिलाकर या किसी प्रदेश के किसी भाग को, से अलग करके किसी राज्य क्षेत्र को घटा सकती हैं, बढ़ा सकती है, उसकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है तथा राज्य के नाम में भी परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार राज्य के स्वरूप के निर्माण का अधिकार भारत की संसद को पर संविधान निर्माताओं ने प्रदान किया है इस दृष्टि से भारत का केंद्र बहुत ही मजबूत है।

3.राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र

के द्वारा भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गए हैं। राज्य के स्तर पर भी इस बात का ही अनुसरण किया गया है जैसा कि संघ के स्तर पर राष्ट्र की कार्यपालिका के प्रधान राष्ट्रपति हैं।उसी प्रकार से राज्य की कार्यपालिका के प्रधान राज्यपाल होते हैं जो कि राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।यद्यपि राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका में नाम मात्र की कार्यपालिका के रूप में है। लेकिन वह रबर स्टैंप की तरह नहीं है कुछ विशेष स्थितियां ऐसी हैं जब राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियां बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। खासतौर से तब जब किसी दल को निम्न सदन में बहुमत न प्राप्त हो ऐसी स्थिति में राज्यपाल को या विवेक संवत निर्णय स्वयं लेना होता है कि कौन ऐसा दल और नेता है जो एक स्थाई और स्थिर सरकार नियतकाल के लिए दे सकता है। साथ ही एक महत्वपूर्ण अधिकार राज्यपाल को यह भी है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार चलता है या नहीं इस बात का संज्ञान राज्यपाल ले सकता है और इसकी रिपोर्ट राष्ट्रपति को रोकता है। जिसके आधार पर यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हो जाते हैं तो राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार से राज्यपाल एक बहुत ही महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भूमिका में आ जाते हैं। क्योंकि राज्यपाल की नियुक्ति जैसा कि हमने कहा राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है और राष्ट्रपति केंद्र की कार्यपालिका यानी अखिल भारतीय कार्यपालिका का प्रमुख है इसलिए राज्यपाल के माध्यम से केंद्र का नियंत्रण राज्य पर बढ़ जाता है जो संघात्मक शासन की भावना के अनुकूल नहीं है।

4.आपातकालीन उपबंध

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति जो कि संघ की कार्यपालिका का प्रमुख है। इसलिए देश पर किसी भी संकट की स्थिति में देश के पूरे हिस्से में या किसी भाग में राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियां प्रदान की गई हैं।जिसमें से अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल जो युद्ध , वाह्य आक्रमण, सशस्त्र विद्रोह के कारण घोषित किया जा सकता है।तथा अनुच्छेद 356 में राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा की जा सकती है।इसके साथ ही अनुच्छेद 360 के द्वारा वित्तीय आपात की घोषणा राष्ट्रपति के द्वारा की जा सकती है।इस प्रकार के घोषणाओं के

लागू होने की स्थिति में केंद्र सरकार का नियंत्रण राज्य सरकार पर बहुत अधिक हो जाता है और राज्य सरकार के राज्य सूची के विषयों में भी केंद्र का हस्तक्षेप हो जाता है। इस प्रकार से इस आपातकालीन स्थितियों में संघात्मक ढांचा एकात्मक में परिवर्तित हो जाता है, और केंद्र सरकार और अधिक शक्तिशाली हो जाती है।

5. संघ सरकार के द्वारा राज्य पर नियंत्रण से सम्बंधित अन्य प्रावधान

अनुच्छेद 249 के अनुसार भारतीय संसद का उच्च सदन राज्यसभा यदि राज्य सूची के विषय पर दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दें कि राष्ट्रीय हित में इस पर कानून बनाना नितांत आवश्यक है, जिसका अधिकार संसद को देते हैं तो उन विषयों पर या विषय पर कानून निर्माण का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार संविधान का अनुच्छेद 252 यह स्पष्ट प्रावधान करता है कि भारतीय संघ के दो या दो से अधिक राज्य यदि इस बात का संकल्प पारित कर दें कि राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार भारत की संसद को है ,तो यह अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है। साथ ही एक अनुच्छेद का उल्लेख और करना नितांत आवश्यक है अनुच्छेद 253 यह भी केंद्र को राज्यों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण का अवसर प्रदान करती है ।अनुच्छेद 253 के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संधि और समझौतों को लागू करना के उद्देश्य से संसद किसी भी विषय पर कानून बना सकती है क्योंकि राष्ट्र संबंधों के संचालन का दायित्व संघ पर है ।इसलिए 253 अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और कानूनों को लागू करने के संदर्भ में कोई भी कानून बना सकता है चाहे वह राज्य सूची के विषयों का अतिक्रमण ही क्यों न करता हो।

एक और महत्वपूर्ण अनुच्छेद का उल्लेख करना आवश्यक है अनुच्छेद 256 और 257 भारत सरकार को राज्य की सरकारों को निर्देश देने का अधिकार प्रदान करती है तथा भारत सरकार के कार्यकारी दायित्वों का पालन करने में राज्य के द्वारा कोई अड़चन ना उत्पन्न हो सके इसका प्रावधान करती है। साथ ही ऐसा न करने पर अनुच्छेद 365 के तहत संघ सरकार के निर्देशों का अनुपालन नहीं करने के कारण , तो भारत के राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा कर दे। इस प्रकार से हम देखते हैं कि उक्त अनुच्छेद भारत सरकार को यह अवसर प्रदान करते हैं कि वह एक मजबूत केंद्र बन सके और विशेष स्थिति में राज्य सरकारों को प्राप्त राज्य सूची के विषयों को भी आच्छादित कर सके।

6. इकहरी नागरिकता

संघात्मक शासन व्यवस्था में जैसा कि अमेरिका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है। दोहरी नागरिकता नागरिकता का तात्पर्य एक नागरिकता वहां की जिस संबंधित राज्य में रह रहा है तथा एक नागरिकता अखिल भारतीय स्तर पर प्राप्त राष्ट्रीय सरकार की ,लेकिन भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात प्रत्येक भारत का वासी ,वह केवल भारत का नागरिक है न कि किसी राज्य का ही नागरिक है।

7. राज्यों को उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व नहीं

संघात्मक शासन में संघीय संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था रहती है उसके लिए जैसा कि अमेरिका में सीनेट राज्यों का ही सदन है। उसी प्रकार से हमारे देश भारत में भी राज्यों के सदन के रूप में राज्यसभा है। लेकिन संघ में सभी इकाइयों को समान दर्जा प्राप्त होता है। इसलिए अमेरिका में इसका अनुसरण करते हुए सीनेट में सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। जबकि हमारे देश भारत में राज्यसभा में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न देकर के यह प्रतिनिधित्व उन्हें जनसंख्या के आधार पर दिया गया है । इस प्रकार से आए ऐसे उपबंध भी कहीं न कहीं भारत की केंद्रीय सरकार या केंद्रीय संघीय शासन को मजबूती प्रदान करने का कार्य करते हैं।

5.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम एक बात स्पष्ट करना चाहेंगे वह यह कि भारतीय संविधान में संघात्मक शासन प्रणाली की बहुत सारी विशेषताएं पाई जाती हैं ।भारतीय संविधान निर्माता भारत में पाई जाने वाली विविधता से परिचित है और उस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उस विविधता को अपने दायरे में रहते हुए, अपने लिए कार्य करने के अधिकार के तहत संघात्मक शासन की व्यवस्था प्रदान किए गए ।

अर्थात स्थानीय स्तर पर राज्य सरकार अपने स्तर पर संविधान की सीमा में, मर्यादा में रहते हुए अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए, अपने क्षेत्र के अपने जनमानस के विकास के लिए प्राथमिकताएं तय कर सकें और कार्य कर सकें । इसलिए उनको अधिकार प्रदान किए गए लेकिन साथ ही साथ बहुत सारे ऐसी विशेषताएं हैं जो यह दर्शाती हैं कि भारत में एक मजबूत केंद्र की स्थापना की गई है तो यह स्पष्ट कर दें कि कुछ आलोचक कहते हैं कि संघात्मक शासन की व्यवस्था के अनुपालन में बहुत से प्रावधान तक किए गए हैं लेकिन भारतीय संविधान के द्वारा स्थापित जो संघात्मक शासन है, इसे पूरी तरह से संघ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें बहुत सारे एकात्मक विशेषताएं पाई जाती हैं। अगर इस बात का अध्ययन वैश्विक स्तर पर करें तो यह साथ दिखाई देता है कि यदि अमेरिका को ही देखें तो अमेरिका में भी संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया जहां पर केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया, राज्यों के लिए पृथक संविधान और उनकी अपनी न्यायपालिका और दोहरी नागरिकता तथा उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व आदि व्यवस्थाएं की गई लेकिन उसके साथ-साथ एक मजबूत केंद्र की स्थापना की गई है ।

इसीलिए वहां पर संघात्मक शासन के साथ अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई जहां राष्ट्र के अध्यक्ष राष्ट्रपति कार्यपालिका के प्रधान होते हैं । एक मजबूत केंद्र सरकार की स्थापना का प्रयास भी किया गया ।इसी प्रकार से कनाडा में संघात्मक व्यवस्था की विशेषताओं का अनुसरण किया गया परंतु और अवशिष्ट शक्तियां वहां केंद्र को देते हुए एक मजबूत केंद्र की

स्थापना का प्रयास किया गया ।यह कहना कि भारत में ऐसा नहीं हो पाया यह कोई युक्तियुक्त तथ्य प्रतीत नहीं होता है।

वैसे भी संविधान निर्माताओं का उद्देश्य शासन के किसी ऐसे रूप को अपनाना नहीं था और उसकी शुद्धता को बनाए रखना नहीं था ।वरन संविधान निर्माताओं का उद्देश्य यह कैसी शासन प्रणाली की स्थापना करना था जो देश की विविधता को स्वीकार करें ।देश में विविधता को स्थापित करें साथ ही इस विविधता को एक सूत्र में पिरोने का भी कार्य कर सकें ,विविधता की स्थापना हो सके, उसे सम्मान मिल सके। विविधता राज्य के रूप में अपने अधिकारों और अपने अधिकारों का संविधान की मर्यादाओं में प्रयोग करते हुए ,अपने लिए प्राथमिकताएं तय कर कार्य कर सकें। इसलिए राज्यों को अधिकार प्रदान किए गए , तथा विविधता विघटन के स्तर पर न जा सके इसलिए एक सूत्र में पिरोने के लिए अखिल भारतीय विशेषताओं का समावेश किया गया ताकि संकटकालीन स्थिति में एकजुट हो सकें ।वर्तमान समय देश के अंदर भी बहुत सारे ऐसे कारण हैं जिनके निराकरण के लिए एक मजबूत केंद्र सरकार की आवश्यकता है तथा परराष्ट्र संबंधों के संचालन में अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी राष्ट्रों के बीच संबंधों के संचालन में भी एक मजबूत केंद्र सरकार की आवश्यकता है।

इसलिए अगर दुनियाँ के स्तर पर भी देखें तो पाते हैं कि जहां भी संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गई है वहां देश के अंदर के कार्य को और बाहर के कार्य को करने के लिए एक मजबूत केंद्र को बल मिला और प्रोत्साहन मिला ।इस वजह से लगभग सभी संघात्मक शासन व्यवस्थाओं का अनुसरण करने वाले देशों में एक मजबूत केंद्र की सरकार व्यावहारिक रूप से कार्य कर रही है। इसका प्रावधान भारतीय भारतीय संविधान निर्माताओं ने किया क्योंकि जब भारतीय संविधान का निर्माण किया गया उस समय भारत विभाजन एक दुखद घटना हुई । इसलिए भारतीय संविधान निर्माता एक ऐसी संविधान की रचना करना चाहते थे उसके आधार पर राजनीतिक व्यवस्था आगे बढ़ सके , जहां देश में विविधता को स्थान तो मिले, साथ ही एक मजबूत केंद्र सरकार की स्थापना हो सके जो राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रख सकें।

इसीलिए डॉक्टर अंबेडकर ने विभाजन के संदर्भ में कहा था कि हम 1935 के अधिनियम से मजबूत केंद्र की स्थापना कर रहे हैं। संविधान के द्वारा यही कहना है कि भारतीय संविधान निर्माता जहां एक तरफ विविधता को सम्मान देना चाहते थे वही राष्ट्र की सुरक्षा और राष्ट्र की एकता और अखंडता से किसी प्रकार की समझौता करने को तैयार नहीं थे। इसीलिए उन्होंने एक मजबूत केंद्र की स्थापना की ,जिससे राष्ट्र की एकता और अखंडता सुदृढ़ और सुरक्षित रह सकें। इसके साथ-साथ बहुत से कारक हैं भारतीय संविधान में एकात्मक विशेषता को समाहित करते हैं जैसे अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्ग के कल्याण से संबंध में राष्ट्रपति अधिकार प्राप्त है ।संपूर्ण भारत के लिए एक चुनाव आयोग अखिल भारतीय स्तर पर चुनाव के संचालन के लिए उत्तरदाई है। इसके साथ ही साथ वित्तीय प्रशासन के मामले में नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति और उनके कार्य दायित्व अधिकार और शक्तियां भी केंद्रीय मुखी है ।भारत के राष्ट्रपति के द्वारा वित्त आयोग का गठन जिसकी अनुशंसा के आधार पर ही केंद्र और राज्य के बीच

राजस्व का वितरण किन सिद्धांतों के आधार पर हो किया जाता है ।क्षेत्रीय परिषद की स्थापना वर्तमान में नीति आयोग पूर्व में योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद आदि संस्थाएं निश्चित रूप से केंद्र को मजबूती प्रदान करती हैं ।परंतु नाना प्रकार की एकात्मक विशेषताओं के बावजूद हमने देखा कि सामान्य स्थिति में भारतीय संविधान संघात्मक सिद्धांतों के अनुरूप ही संचालित होता है जैसा कि डॉक्टर अंबेडकर ने भी इस बात को स्पष्ट किया कि यह पूरी तरह से संघात्मक संविधान है संघात्मक शासन की स्थापना करता है ।इस प्रकार से स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि भारत का संविधान न शुद्ध रूप से संघात्मक है और न ही शुद्ध रूप से एकात्मक है और इसे दोनों का समन्वित स्वरूप वाला ही कहा जा सकता है। जिसमें राष्ट्रीय हित सर्वोच्च है।

5.7 शब्दावली

संघात्मक शासन –ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें शक्ति विभाजन केंद्र और राज्य के बीच हो

एकात्मक शासन – जहां सत्ता एक केंद्र में हो

संसदीय शासन – व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के घनिष्ठ सम्बन्ध पर आधारित शासन

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

5. 10 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संघ की प्रकृति पर निबंध लिखिए।

2.संविधान निर्माताओं के लिए शासन की शुद्धता बनाए रखना नहीं वरन राष्ट्र की सुरक्षा और अखण्डता का लक्ष्य प्राथमिक है। व्याख्या कीजिए।

इकाई- 6 संसद: संगठन एवं शक्तियां

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भारतीय संसद
6.4 संसद का संगठन
6.5 राज्यसभा
6.6 लोकसभा
6.7 संसद की शक्तियॉ
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

हमने यह अध्ययन किया है कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमन्ती होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई 11 में हम संसद के संगठन ,कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमे हम यह अध्ययन करंगे कि की किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है । क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को ,लोक सभा के सामान शक्तियां न होते हुए भी वह महत्त्वपूर्ण है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त आप-

1.संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे

2.राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

3.लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

4.अंततः कानून निर्माण में लोक सभा और राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

6.3भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके है कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाइ्र गई है। संघीय स्तर के विधान निमा्त्री संस्था को संसद कहते है। राज्य स्तर पर विद्वान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते है। प्रस्तुत इकाई में सघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहॉ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक हे कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते है वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रुप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 119 में स्पष्ट रुप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यो आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 119 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

6.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छे 119 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोइ्र भी विधेयक कानून का रुप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निवा्रचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राजयों की विधानसभाओं के निवा्रचित सदस्य है। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधितव की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लघंन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिय द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेउ 61में किया गया है।

6.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उ्च्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलबध व्यक्तित्व होंगे । इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से 233+12 = (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रुप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार । यहॉ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बडे हो । हमारे यहॉ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते है। यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यक्रम 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित है-

1. वह भारत का नागरिक है।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो

3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,

4. वह पागल या दिवालिया न हो,

5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाऐंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो,किसी भी प्रदेश में लड सकता है।

2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारीः- राज्यसभा के पदाधिकारी

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है (अनुच्छेद89) और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रुप में कार्य करते है।

अनुच्छेद 91 के अनुसार सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है। जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यो का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियॉ

1. विधायी शक्तियॉ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियॉ प्राप्त है। साधरण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते है। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रुप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियॉ है परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियॉ प्राप्त है क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते है। वे तभी पारित माने जाऐंगें जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति

में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियॉ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते है। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने केपश्चातराज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रुप में पारित समझा जाएगा, जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियॉ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रुप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते है, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते है। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियो के सन्दर्भ में राज्यसभा,लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियॉ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियॉ भी राज्य सभा की है, जो निम्नलिखित है-

क. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते है।

ख. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते है।

ग. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।

घ. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।

ङ. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियॉ है, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित है-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेउ 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।

2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

6.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ चुके है कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते है क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते है। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते है। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता:-
1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।
4. वह, पागल या दिवालिया न हो ।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँजिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 19116 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता हैं।इस प्रकार 1970,1977,1979,1990,1997,1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते है। यहॉ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि

के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवॉ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोसधन के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 552 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से । जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते है। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है ।परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य है जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधत्व करते है, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है । मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याक्षी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधन के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए । परन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष ।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रुप में कार्य करते है। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रुप में नहीं वरन् लोकसभा के सदस्य के रुप में ग्रहण करता है । यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहॉ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियॉ

हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रुप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रुप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरुप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद में लोकसभा,राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके है कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते है। साथ ही वित्त विधेयक उसी रुप में पारित हो जाता है, जिस रुप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोग सकती है। इसके पश्चात वह उसी रुप में पारित समझा जाएगा जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति- भारतीय संविधान में स्पष्ट रुप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहॉ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते है। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। और सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसकों लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछकर, पूरक पश्न, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियॉ प्राप्त है। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते है और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनो सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करे।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियॉ समान है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

6.7 संसद की शक्तियॉ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियॉ निम्नलिखित है-

1- कानून निर्माण की शक्तियॉ- शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते है। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेउ 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।

2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद् का गठन करते है।

अनु0 115 (3) के अनुसार मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियॉ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियॉ व्यापक है। परन्तु वे अमर्यादित नहीं है क्यों कि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राष्ट्रपति संसद का अंग है ।सत्य असत्य /

2.संसद राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है ,। सत्य असत्य /

3.राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य असत्य /

4.लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य असत्य /

5.राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य असत्य /

6.राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य असत्य /

11.राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य है । सत्य असत्य /

6.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में सामान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम ६ माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल १४ दिन तक रोक सकती है ,इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी ।राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो ,उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। इस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

6.9 शब्दावली

संसद= राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियां निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है ,वरन मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 11. असत्य

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

6.13 निबंधात्मक प्रश्न संसद

1.संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये।

इकाई- 7 राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 राष्ट्रपति
 7.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन
7.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ
 7.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ
 7.4.2 विधायी शक्तियाँ
 7.4.3 राजनयिक शक्तियाँ
 7.4.4 सैनिक शक्तियाँ
 7.4.5 न्यायिक शक्तियाँ
 7.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ
7.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति
7.6 उपराष्ट्रपति
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे । इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मंत्रिपरिषद को वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रुप में ,समझने में सहायता मिलेगी । साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रुप से समझने में सहायता मिलेगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
2. राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
3. आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है या नहीं है।

7.3 राष्ट्रपति

शासन के तीन अंग होते है जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

7.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है । गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानूगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

1- वह भारत का नागरिक हो

2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुके हो,

3-वह लोकसभा के सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखते हो,

4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो।

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें-

1. संसद के दोनो सदनो (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।

2. राज्यों की विधानसभाओ के निर्वाचित सदस्य शामिल होगें

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विघान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1997 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 99(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतो की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{मत का मूल्य} = \frac{\text{विधान सभा के एक सदस्य के राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल विधायकों की संख्या x 1000}}$$

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

।

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी । A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानन्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न पति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता हैराष्ट्र-1-?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनूच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पॉच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है । इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह

उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है । राष्ट्रपति अपने पॉच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियॉ – राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाला जा सकता है।

राष्ट्रपति को इस समय 5 लाख रु0/माह वेतन है। अनुच्छेद 99(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है । संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो ,उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है । इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जॉच करेगा । इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है ।यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है

7.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं ,जो निम्नलिखित हैं-

7.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 73(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा। राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोडा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका

संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है । संसदीय परम्परा के अनुरुप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है । अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं । श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमन्त्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी । वर्तमान प्रधानमन्त्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं । संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 79(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं । अनुच्छेद 79(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य , सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं । अनुच्छेद 79(9) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए विना भी मन्त्री रह सकता है ।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि ,जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण ,मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े ,ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है । इस सबन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है । इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरुप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं ।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं ।भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति ,नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति , राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति,मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निष्चित व्यक्तियों से परामर्श केपश्चातकी जाती है । राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है ।

7.4.2.विधायी शक्तियाँ

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है । संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है । संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है । इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होनें के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं । कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों(लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रुप लेता है ।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 89 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होनें पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर. एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य. कला. विज्ञान. या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करनें के लिए .राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाई पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)

2-अनुच्छेद 191 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन

3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - -वित्त आयोग की सिफारिशें

4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन

9-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन

6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक. जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्यों कि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायको को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जँय। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रुप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए विना ही विधेयक को उसी रुप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगानें वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करनें से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।
अध्यादेश जारी करनें की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो. वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति -यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति ससद द्वरा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।

2-निलम्बनकारी वीटो –

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिष्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

7.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

7.4.4 सैनिक शक्तियाँ

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संध की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्यों कि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा

निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं. जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

7.4.5 न्यायिक शक्तियाँ

हमारे संविधन के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रुप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1.न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं । उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।

2. क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी श्क्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ- भी प्राप्त हैं , जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन. परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है । राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिख्ति परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में।..जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3. उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे यंविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को. यदि वह आवश्यक समझे तो अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त है -जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

7.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे । इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रुप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं । हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 352 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है । ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि.यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि .युद्ध. वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है । यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था । 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की ।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराज्य का मुंह देखना पड़ा । जनता पार्टी की सरकार बनी । इस सरकार नें 1979 के 44वें संविधानिक सशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया । साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी ।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है । आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है । नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है । आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है । यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी । इस आपात काल को संसद साधरण बहुमत से समाप्त कर सकती है ।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकती । 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस

प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 29 जून 1975 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी , इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।
राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढा सकती है. किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर .यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 290 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम उपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुचछेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 394 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषण की गयी है तो अनुच्छेद 398 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 399 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है ,जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न
4)उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?
5उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?-
6-राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?
7-1979 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलतासंघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो।अनुच्छेद 356(1) के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधरित हो सकता है। राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद .घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष(पंजाब में पांच वष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं –

1.जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 392 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागूहो।

2.निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभवनहीं है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव—

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंवित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हंथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर।

अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं. परन्तु अनुच्छेद 396 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंवित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रुप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं। अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3) वित्तीय आपात काल

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो .इसे अनिष्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम वैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव:-
संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।
इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।

राज्य के समस्त वित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।

संघीय सरकार ,राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

7.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के विना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यो के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा ।इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श पगाप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे ,लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरुप राष्ट्रपति , राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। किन्तु भारतीय राजनीति में उभरती हुई अनिश्चितता के दौर में राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रपति की इस सक्रियता और महत्ता का कारण ,गठबन्धन की राजनीति और प्रधानमन्त्री पद की गरिमा में तेज गिरावट प्रमुख कारण है।

7.6 उपराष्ट्रपति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 63 के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा ।

योग्यता – उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

1- वह भारत का नागरिक हो

2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,

3-वह राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,

4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,(अनुच्छेद ६६)

(उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हे त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती)

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें-

1. संसद के दोनो सदनो (लोकसभा, राज्यसभा) के सभी सदस्य।

जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विघान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

उपराष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के के अनुसार उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पॉच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व राज्य सभा के द्वारा पारित संकल्प जो लोकसभा से समर्थित हो ,के आधार पर भी हटाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन का पात्र है।

उपराष्ट्रपति के कार्य- उपराष्ट्रपति के कोई कार्य नहीं होते है। वह राज्य सभा के पड़ें सभापति होते हैं।किन्तु किन्हीं कारणों से राष्ट्रपति पद रिक्त(मृत्यु,त्यागपत्र,महाभियोग द्वारा पद से हटाये जाने पर) होने की दशा में वह राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करते है।

अभ्यास प्रश्न ---

8.राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य

9.राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य

10.राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 61 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य

11.राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य

12.राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 396 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोयाणा करते हैं - सत्य/असत्य

7.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट से यह स्पष्ट हो गया है किराष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है , क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं।इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है -व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरुप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रुप से

दिखाई देती है ।भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियां प्राप्त है और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है।इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते वयापक रुप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है । साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्रापत है ।विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है ।इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं ।

7.8 शब्दावली

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते है परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:-जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 91 प्रतिशत)

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य

2-9 वर्ष, 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 9-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 392,

7-आन्तरिक अशान्ति, 8- असत्य, 9- असत्य,10- सत्य, 11- असत्य,

12- असत्य

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

7.11 सहायक/उपयोगीपाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली
भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
The Constitution of India – J.C. Johari- 2004- Sterling Publishers Private Limited New Delhi

7.11 निबंधात्मक प्रश्न-

1. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।

2. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?

3. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए।

इकाई-8 प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद की समीक्षा

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय
    8.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
    8.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
    8.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
    8.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया हैंऔर पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में हैंक्यों कि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक हैंतो दूसरी तरफ उन्हें कुछ स्वविवेकि शाक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमन्त्री होता हैं। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता हैंक्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते, इस कारण से सदन का नेता होने के कारण अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेगें कि-

1. संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।
2. सरकार के गठन में प्रधानमंत्री की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद के विघटन की भी महत्वपूर्ण शक्ति होती है।

8.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है । इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद ,शासन व्यवस्था का केन्द्र विन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है । नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है । वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है,जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग ,प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा ,जिसका प्रधान प्रणानमन्त्री होगा । इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा । संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं । यहॉ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नही है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो ।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए विना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है । साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो । उदाहरण स्वरुप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी । व्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता,किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया ।

संविधान के उपबन्धों और गत वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

1-प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

2-प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

3- प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

4- प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

8.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरुप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ,प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरु को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में काग्रेंस को सफलता मिली और नेहरु जी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त काग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को ,अस्थायी रुप से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात काग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा , क्योंकि काग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरुप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराज्य का सामना करना पड़ा। काग्रेस ,लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई्र थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंनें इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का .जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। काग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ .श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरुप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमर्न्ती पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गाधी को एक शक्तिशाली नेता के रुप में. राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजबाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि की कि काग्रेस के सर्वमान्य नेता के रुप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में काग्रेस की पराज्य हुई और जनता पार्टी को सफलता मिलि। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए. चौधरी चरण सिंह को. तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ. सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु काग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरुप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए. चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रुप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिलि और श्रीमती गॉधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रुप में स्थापित हुई। किन्तु श्रीमती गॉधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या(31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तम्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गॉधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुई। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गॉधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव. एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्यों कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद प्राप्त किया।कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही. जून1991 में पतन हो गया।1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रुप में उभरी। मई 1991 राजीव गाधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को .राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलविहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दकुमार गुजराल की काग्रस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर

नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर .घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेवाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव मेंकांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः काग्रस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैक्यों कि क्षेत्रीय दल. सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते है। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती ।परन्तु 2014और 2019के चुनाव में भाजपा के नेतृत्व में गठबंधन जिसमें भाजपा बहुमत ने स्थितियों में बदलाव लाने का कार्य किया है।

8.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे ,जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में स्थिति काफी हद तक बदल गयी है क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा है। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए , विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति ,धर्म, भाषा ,क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की सख्या को महत्व देना पड़ता है।

8.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं ,जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक

कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री , मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति ,मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है:

1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध- यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण ,संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रुप से दिखाई देता है।

2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी ,दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं , जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि,फ़खरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगनें लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

8.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में में प्रधानमंत्री की नियक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रुप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात प्रधानमंत्रीपद पर रहने वाले डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य रहे ।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है ,इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे

लोकसभा कें बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है ,क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण ,लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल ,मत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री , राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोकसभा के गठन से कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश परराष्ट्रपति ने विघटन किया	सन
1	श्रीमती इन्दिरा गॉधी	1970
2	श्रीमती इन्दिरा गॉधी	1977
3	चौधरी चरण सिंह	1979
4	राजीव गॉधी	1984
5	चन्द्रशेखर सिंह	1991
6	अटल विहारी वाजपेयी	1998
7	अटल विहारी वाजपेयी	1999

यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं(जैसे 1977,1989,1991,1996,1998,1999,2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही ,वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है

2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?

3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?

4. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थे?

5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

8.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है। यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है।और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यस्था में सम्पूर्ण शासन व्यस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है।

8.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद- मंत्रिमण्डल, राज्यमंत्री ,उपमंत्री
2. निम्न सदन- लोक सभा को कहते है।
3. उच्चसदन- राज्य सभा को कहते है

8.6 अभ्यास प्रश्नों केउत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. श्रीमती इन्दिरा गांधी 5. छः माह

8.7 संदर्भग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

8.9निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?

2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।

3 गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई- 9 केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध

9.1प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध

9.3.1राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

9.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

9.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर

9.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

9.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

9.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने व अन्तिम स्वीकृत हेतु केन्द्र का अनुमोदन आवष्यक

9.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

9.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

9.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव

9.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

9.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

9.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बरखास्तगी

9.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

9.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरूद्ध जॉच आयोग

9.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

9.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध

9.5.1 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संगहित तथा विनियोजित शुल्क

9.5.2 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

9.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

9.5.4 संघ के प्रयोजन के लिए कर

9.5.5 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

9.5.6 राजस्व में सहायक अनुदान

9.5.7 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

9.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण

9.7 वित्तीय संकटकाल

9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रन्थ
9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत एक परिसंघ है और उसका संविधान परिसंघीय है। परिसंघ में शासन के दो स्तर होते हैं। सभी शक्तियॉ इन स्तरों में विभाजित की जाती हैं। संघ, अट्ठाइस राज्य और सात संघ राज्य क्षेत्र सभी संविधान से शक्तियां प्राप्त करते हैं। राज्यों को शक्ति संघ नहीं प्रदान करता है। सबकी शक्ति का एक ही स्रोत है और वह है संविधान। संविधान में सभी शक्तियों का विभाजन संघ और राज्यों के मध्य किया गया है।

प्रत्येक परिसंघीय राज्य व्यवस्था का यह चिन्ह् और आवश्यक लक्षण है कि शक्तियों का विभाजन और वितरण राष्ट्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया जाता है जिन शक्तियों को इस प्रकार विभाजित किया जाता है वे साधारणतया चार प्रकार की होती है ;क- विधायी , ख- कार्य पालिका ,ग- वित्तीय , घ- न्यायिक। अतः संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध2.केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध3.केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कर सकेगें।
2) केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रषासनिक शक्तियों के विभाजन की विवेचना कर सकेंगे।
3) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4) केन्द्र राज्य सहयोग प्रापत करने के विभिन्न उपयों की व्याख्या कर सकेंगे।

9.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायीस म्बन्ध

हमारे संविधान के अनुच्छेद 245 से 255 में केन्द्र राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों के बारे में बताया गया है। संघ व राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

1. संघ सूची: इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है। जिसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 100 विषय है। जिनमें से कुछ प्रमुख है- रक्षा, वैदेशिक मामले, देशीकरण व नागरिकता, रेल, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खाने व खनिज आदि।

2.राज्य सूची: इस सूची में साधारणतया वो विषय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामन्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। इस सूची में 61 विषय है, जिनमें से कुछ प्रमुख है- पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, सिचाई आदि।

3.समवर्ती सूची: इस सूची में सामान्यतया वो विषय रखे गये हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनो ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि समवर्ती सूची के विषय पर संघीय संसद तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो तो सामान्यतयः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 52विषय है। जिनमें से कुछ प्रमख ये है- फौजदारी, निवारक बिरोध, विवाह तथा विवाह विच्छेद दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, आर्थिक और समाजिक योजना और सामाजिक बीमा, पुर्नवास और पुरातत्व आदि।

अवशेष विषय: आट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाईयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की भांति अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शक्तियों के बटवारे में केन्द्र सरकार की तरफ झुकाव अधिक है।

9.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

सामान्यतया संविधान द्वारा किये गये शक्ति विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा, नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघ सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा। लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं।

9.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्य सभा द्वारा पुनः प्रस्ताव स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी।

9.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है।अनुच्छेद 250 इस घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत चलते रहेंगे।

9.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाय, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाएगा। राज्यों के विधानमण्डल न तो इन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्ण रूप से समाप्त कर सकते हैं।

9.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

अनुच्छेद 253: यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की संधि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का

अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया जाता है इस स्थिति में राज्य की समस्त विधायी शक्तियां संसद द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार के अधीन इस्तेमाल की जाती हैं इस अधिकार के तहत संसद किसी भी सूची के किसी भी विषय पर विधायन बना सकता है

9.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने व अन्तिम स्वीकृत हेतु केन्द्र का अनुमोदन आवष्यक

उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304ख के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं जिनके राज्य विधान मण्डल में प्रस्तावित किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या उससे बाहर, वाणिज्य या मेल जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

9.4 केन्द्र-राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र व राज्यों की कार्यपालिकायें अलग-अलग होती हैं। जहॉं तक विधान बनाने का प्रश्न है दोनों के क्षेत्र को तय करना कठिन नहीं है क्योंकि सप्तम अनूसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। प्रशासनिक मामलों में बहुत सी कठिनाइयां सामने आती हैं कुछ मामले ऐसे होते हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह निपटाया जा सकता है और कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके लिए बडे संगठन की आवश्यकता होती है जिससे क्षमता और मितव्ययता संभव हो सके। इसके अतिरिक्त परिसंघ की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उनके झगडे तय करना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 256 से 263 तक कुछ उपबन्ध किए हैं।

9.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता है। इस प्रावधान का यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक शक्ति को इस प्रकार प्रयोग में लाना होता है। कि वह संघ सरकार की प्रशासनिक शक्ति को प्रतिबन्धित न

करें। संघ सरकार आवश्यकतानुसार इस प्रकार के निंदेश भी राज्य सरकार को दे सकती है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार राज्यों को निम्नलिखित विषयों पर निर्देश दे सकती है-

1.राष्ट्रीय तथा सैनिक महत्व के यातायात तथा सूचना के साधनों का निर्माण और उनकी देखभाल करना।

2.राज्य में विद्यमान रेलमार्ग की सुरक्षा करना। तो भी जब कभी किसी यातायात के साधन के निर्माण अथवा देखभाल करने में अथवा रेलमार्ग की सुरक्षा करने में राज्य सरकार को अतिरिकत व्यय करना पड़ जाता है तो भारत सरकार उसका भुगतान राज्य को कर देती है। और यदि अतिरिक्त व्यय की राशि के लिए कोई मतभेद हो जाता है तो भारत को मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ इसका निर्णय करता है। (अनुच्छेद 257)।

3.परिगणित जनजातियों के हित के लिए बनाई योजनाओं को लागू करना (अनु. 339)।

9.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव

संघ सरकार को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत समान्य तथा असामान्य अवस्थाओं में जो निर्देश देने की शक्ति दी गई है उसके परिणामस्वरूप यह भी बात सामने आती है कि यदि संविधान के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार नहीं करती तो राष्ट्रपति यह मान सकता है कि राज्य सरकार संविधान के अनु. 365 के अन्तर्गत प्रावधान के अनुसार कार्य करने के समर्थ नहीं है। जैसे ही यह घोषणा की जायेगी, राज्य सरकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत बरखास्त कर दी जायेगी। इस आधार पर राज्य की विधानसभा या तो निलम्बित की जा सकती है या भंग की जा सकती है।

9.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता यह है कि यह सहकारी संघ प्रणाली पर आधारित है। भारत सरकार के 1935 के विधान के समान यह संघ को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रतिबन्ध सहित अथवा प्रतिबन्ध रहित कुछ कार्य राज्य सरकरों को सौंप दे अथवा राज्य सरकारों को स्वीकृति से इसके अधिकारियों को सौंप दे (अनु. 258)।

इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में तो राज्य सरकारों की अनुमति के बिना भी लोकसभा कानूनन अधिकार दे सकती है और राज्य के अधिकारियों को कार्य सौंप सकती है। जो भी ऐसे मामलों में यदि राज्य सरकार को कुछ अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है तो उसको भारत सरकार अदा करती है। यदि होने वाले अतिरिक्त व्यय के विषय में भारत सरकार और राज्य सरकारों में मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है। इस

अनुच्छेद के अनुसार जनगणना करवाना, चुनाव के लिए मत-सूची तैयार करवाना और चुनाव करवाना ये तीनों काम राज्य सरकारों को सौंपे हुए हैं।

9.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

मूलतः संविधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके अनुसार एक राज्य सरकार कुछ कार्य भारत सरकार के किसी अंग को सौंप सकें। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि कभी ऐसी भी घटना हो सकती है। केन्द्र सरकार ने जब उड़ीसा सरकार की ओर से हीराकुण्ड बॉध का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि इसकी लागत राज्य सरकार के खातों से खर्च होगी तो लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक ;ऑडिटर जनरल ने आपत्ति की। उसकेपश्चात1956-का सातवां संविधान संशोधन पारित किया गया और संविधान में अनुच्छेद 258 ए जोड़ दिया गया। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह सप्रतिबन्ध अथवा अप्रतिबन्ध रूप से कुछ कार्य सौंप दे जिससे राज्य की प्रशासनिक शक्ति संघीय सरकार के अधिकारियों के पास पहुँच जाये। परन्तु यह सब भी भारत सरकार की अनुमति से ही हो सकता है।

9.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बर्खास्तगी

राज्यपाल किसी भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण करता है। वस्तुतः वे शुद्ध रूप से संघीय सरकार की दयाभाव पर निर्भर हैं। इसलिए अनेक बार उन्हें केन्द्रीय सरकार के दबाव के कारण मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करने तथा पदच्युत करने और विधानसभा की बैठक बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का कर्तव्य निबाहना पड़ता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को निश्चित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करने के अधिकारों का प्रयोग केन्द्र में सत्ता दल के हितों को ध्यान में रखते हुए करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत हद तक केन्द्र राज्यों की स्वायत्ता को राज्यपालों के द्वारा नष्ट कर देता है।

9.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। यद्यपि इसमें यह अवश्य है कि यदि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी बन गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान में यि गये प्रावधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है। इस अनुच्छेद का केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी ने पुनः-पुनः प्रयोग पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया और दूसरी और राज्यों की स्वायत्ता को नष्ट करने के लिए किया। जो भी राज्य सरकार अपने अनूकूल न दिखाई दी उसे ही पदच्युत कर दिया गया तथा विधानसभाओं को या तो निलम्बित कर दिया गया अथवा केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के हितों को ध्यान में रखते हुए उसे भंग कर दिया

गया। उस अनुच्छेद ने वस्तुतः राज्य सरकारों को प्रशासन की दृष्टि से सर्वथा केन्द्र के अधीन बना दिया।

9.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरूद्ध जॉच आयोग

एक दूसरा उपाय जिसके द्वारा संघ सरकार राज्य सरकारों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है, वह है केन्द्र सरकार द्वारा मुख्यमंत्रियों के भूल-चूक या अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उनके विरूद्ध जॉच-आयोग बैठाना। इस प्रकार का जॉच आयोग सबसे पहले पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों के विरूद्ध संघ सरकार ने 1963 में दास आयोग के नाम से बैठाया था। इसके उपरान्त इस प्रकार के जॉच आयोग बैठाए गए जैसे 1972 में पंजाब में सरकार प्रकाश सिंह बादल के विरूद्ध, 1976 मे तमिलनाडु में करूणानिधि के विरूद्ध सरकारिया आयोग, आन्ध्र में वेंगल राव के विरूद्ध विया दलाल आयोग, कर्नाटक में देवराज उर्स के और हरियाण में बंसी लाल के विरूद्ध 1978 में, और त्रिपुरा के मुख्यमन्त्री एस. एस. सेन गुप्त के विरूद्ध 1979 में बर्मन आयोग। 1981 में संघ सरकार ने तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट घोटाले के विषय में जांच करने लिए श्रे आयोग की नियुक्ति की थी।

9.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

संविधान में राज्यों की सेवाओं और केन्द्र सेवाओं का प्रावधान है। तो भी कुछ सेवाए ऐसी हैं जो अखिल भारतीय हैं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा ;इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, और भारतीय पुलिस सेवा ;इण्डियन पुलिस सर्विस, केन्द्र सरकार इसके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस प्रकार की अखिल सेवा के बनाने की सिफारिश करें। केन्द्र की अनुमति के बिना उन पर कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

9.5 केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध

कोई भी सरकार बगैर धन के सुचारू रूप से नहीं चल सकती है एक परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों की स्वतंत्रता आवश्यक होती ह। यह स्वतंत्रता तभी रह सकती है जब राज्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था हो। प्रायः सभी मुख्य परिसंघों में वित्तीय व्यवस्था की राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रयाग किया जाता है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263-293 तक वित्तीय सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। अनुच्छेद 265 के उपबन्ध प्रत्यक्ष तथ अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के करो पर लागू होते हैं। अनुच्छेद 266 के अनुसार भारत सरकार प्राप्त सभी राजस्व उधार

लिया गया धन तथा उद्योग के प्रतिदान में प्राप्त सभी धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी और इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया धन तथा उधार के प्रतिदान में प्राप्त धनों की एक संचित निधि बनेगी जो राज्य की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी। भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन लोक लेखे ; में जमा किया जाऐगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 267 में भारत व राज्यों के लिये आकस्मिकता निधि की व्यवस्था है जो अपूर्व दृष्ट ; व्यय के लिए क्रमश' राष्ट्रपति व राज्यपालों के हाथ में रखी जाएगी।

भारतीय संघ में संघ और राज्यों के बीच राजस्व वितरण की निम्नलिखित पद्धति अपनाई गई है।

9.5.1 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संगहित तथा विनियोजित शुल्क

अनुच्छेद 268 में यह उपलब्ध है कि ऐसे मुद्रा शुल्क औषधीय और प्रसाधनीय पर ऐसे उत्पादन शुल्क जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किये जायेगे परन्तु संघ राज्य क्षेत्र के भीतर उदग्रहीत ;समअपमकद्ध किए जाने वाले शुल्क भारत सरकार द्वारा और राज्यों के बीच उदग्रहीत शुल्क राज्य सरकारों द्वारा संग्रहीत किये जाएंगे। जो शुल्क राज्यों के भीतर उदग्रहीत किए जाएंगे वे भारत की संचित निधि में जमा न होकर उस राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएगें।

9.5.2 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल समुद्र तथा वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथ यात्रियों पर सीमान्त कर रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान प्रदान पर मुद्राक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य से माल के क्रय विक्रय पर कर।

9.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

कुछ कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं किन्तु उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आयकर का विभाजन संघीय भू भागों के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आयकर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी जीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पान शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

9.5.4 संघ के प्रयोजन के लिए कर

अनुच्छेद 271 में यह उपबन्ध है कि संसद 269 और 270 में निर्दिष्ट शुल्कों या करों की अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है। अधिभार से हुई सारी आय भारत की संचित निधि का भाग होगी। संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि।

9.5.5 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

अनुच्छेउ 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। इससे प्राप्त आय राज्य या उसकी नगर पालिकाओं, जिला वार्डों या सथानीय बोर्ड़ों के हितों में प्रयोग की जाएगी। राज्यों के मुख्य राजस्व स्रोत हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर वाहनों पर चुंगी कर आदि।

9.5.6 राजस्व में सहायक अनुदान

अनुच्छेद 273 के तहत पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान पैदा करने वाले राज्यों- बंगाल, उड़ीसा, बिहार व असम को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के किए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

9.5.7 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संपत्ति निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेेने का अधिकार राज्यों को भी प्राप्त है परन्तु वे विदेशी से उधान नहीं ले सकते। यदि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कंही से कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है।

9.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने का ढंग एवं उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संसद राज्यों की आय पर अपना नियंत्रण रखती है।

9.7 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकाल की स्थिति में राज्यों का आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1.अनुच्छेउ 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। सत्य असत्य/

2.अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के किए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। सत्य असत्य/

3.भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। सत्यअसत्य/

4.संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। सत्यअसत्य/

9.8 सारांश

जिस प्रकार से एक गाड़ी को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों, के मध्य समन्वय का होना आवश्यक है उसी प्रकार से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर समन्वय ही देश को विकास के क्षेत्र में ऊचॉइयों पर ले जा सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात आरम्भिक वर्षों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की भावना थी किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनो के मध्य सम्बन्धों में दरारें दिखनी लगीं। इसका एक कारण तो यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी में अपने देश की सरकार के प्रति चरम सीमा पर उत्साह था तथा दूसरा कारण यह था कि ज्यादातर राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य बड़े भाई तथा छोटे भाई जैसा रिश्ता था अतः तनाव न के बराबर था। तनाव उत्पन्न हाने का मुख्य कारण राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय होना था। धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य तनाव बढ़ाने के मुख्य कारणों में राज्यपाल की भूमिका भी मुख्य रही है। क्योंकि राज्यपाल सरकारों में संविधानिक प्रमुख हाने के स्थान पर केन्द्रीय एजेन्ट के रूप में ज्यादा कार्य करने लगे हैं। तनाव का

एक और मुख्य कारण अखिल भारतीय सेवायें हैं जिसके कि सदस्यों को नियन्त्रित करने वाली केन्द्र सरकार होती है जबकि वो कार्य राज्य सरकारों में करते है और बगैर केन्द्र की अनुमति के उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही नही कर सकती है। तनाव का एक अन्य कारण वित्त भी है। कुछ सरकारें केन्द्र से मिले धन को राज्य के विकास में न लगाकर अपने राजनीतिक जनाधार को बढ़ाने में लगी रहती है। जिसे कि केन्द्र द्वारा अक्सर ही विरोध प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र राज्यों के मध्य सम्बन्ध केन्द्र में प्रधानमंत्री की स्थिति के ऊपर भी निर्भर करता है। 1990 के पश्चात केन्द्र में ज्यादातर सरकारें कमजोर रही हैं उसका सबसे बड़ा कराण साक्षा सरकार का होना रहा है। केन्द्र में सरकार राज्यों के क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनायी जा रही है। जिसकी कि वहज से समर्थन देने वाली पार्टी के राज्यों में केन्द्र सरकार ब्लेक मेल होती रहती है। इसके उदाहरण हमको दिन प्रतिदिन देखने को मिलते रहते हैं। यदि हमको वास्तव में अपने देश को तरक्की की राह पर ले जाना है तो केन्द्र सरकारों का राज्यों सरकारों के मध्य विवाद रहित तथा स्वार्थ रहित सम्बन्ध होने चाहिये।

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रषासनिक, विधायी तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है और यह विभाजन संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को बताया गया है। स्पष्ट विभाजन के बावजूद भी विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कठिनाइयॉं आती हैं। यह कठिनाइयॉं वहॉं अवष्य उत्पन्न होती हैं जहॉं केन्द्र तथा राज्यों में अलग-अलग पार्टी की सरकारें होती हैं। देष की तरक्की के लिए केन्द्र तथा राज्यों के मध्य मधुर सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवष्यक है।

9.9 शब्दावली

अनुच्छेद 352 : राष्ट्रीय आपात काल

अनुच्छेद 356 : राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता

अनुच्छेद 360 : वित्तीय आपात काल

अखिल भारतीय सेवायें : भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य2. सत्य3. सत्य4. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.भारत का संविधान: ब्रज किशोर शर्मा , 2008ए प्रेटिंस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।

2. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फाडिया, 2002ए साहित्य भवन पब्लिकेषन आगरा।

3.भारतीय प्रशासन: प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।

4.इंडियन एडमिनिस्ट्रेसन: डा. बी. एल. फडिया, डा. कुलदीप फडिया 2007ए साहित्य भवन पब्लिकेषन आगरा।

9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.इंडियन एडमिनिस्ट्रेसन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।

2.इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेसन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।

2.भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001ए यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

2.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों पर प्रकाष डालिए।

3.केन्द्र तथा राज्यों में मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

4.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवाद के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई-10 राज्यपाल, मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 राज्यपाल
10.3.1 राज्यपाल का कार्यकाल
10.3.2 राज्यपाल की शक्तियां और कार्य
10.3.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
10.3.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
10.3.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
10.4 मंत्रीपरिषद और मुख्यमंत्री
10.4.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
10.4.2 मुख्यमंत्री के कार्य
10.4.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
10.4.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
10.5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारत में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1) राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
2) राज्यपाल की शक्तियों और कार्यो की जानकारी ले सकेंगे।
3) राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
4) राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों को समझ सकेंगे।
5) तुलनात्मक दृष्टि से राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्तियों की जानकारी लेंगे।

10.3 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते है। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद इत्यादि होते है।

10.3.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है । वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नही है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है लेकिन पद के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते है। एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

10.3.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ है जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार हैः-

कार्यकारिणी शक्तियाँ

1.राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है ।
2.महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3.राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।
4.यद्यपि राज्यपाल को उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।

5.यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नही हो सकता तो विधान सभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।

6.यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्य पाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान,समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो।

विधायनी शक्तियां

राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधान सभा को भी भंग कर सकता है।

राज्यपाल को विधान सभा और विधान परिषद के सत्रों को अलहदा अथवा संयुक्तरूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है। राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-

1.विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
2.या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
3.या वित्त विधेयक को छोडकर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुर्नविचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुर्नविचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं।
4.वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है, और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस संदर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नही है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलो पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

1.ऐसा विषय जिस से सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या

2.राज्यपाल ऐसे विषय से संबन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।

राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है।

राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा या फता को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नही है।

आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बडी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ-न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करें कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। संभव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरूद्ध हो। उदाहरण के लिए -

1.जब राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।

2.राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।

3.राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी है। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते है।

10.3.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। यदि मन्त्रि परिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पत रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधान सभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधान सभा में शासक दल में टूट फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो। तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है। क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलो की सरकारे हो, तब वक केन्द्र के हितो को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नही होता। ऐसी स्थिति में पीडित दल न्यायालय की शरण लेता है। राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कडी आलोचना हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच टकराव बढता है और संघात्मक सरंचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

10.3.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक जो केन्द्र मे भी है और राज्यों में भी। केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान है। कार्यपालिका की

वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विषम स्थिति है क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है ।सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञो ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद 3146 का अक्सर दुरूपयोग करके राज्यपाल ने स्वंय को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम एक कुशल राजनीति अधिक सिद्ध किया है । इससे राज्य में अस्थिरता, दल- बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता हैं।उदाहरण के लिये 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गई जबकि 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गई। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया । 1980 में काग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया , और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया ।

10.3.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ उस से राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता । राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान है । अनुच्छेद 1149 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा,अपनी पूरी योग्यता से संविधान और कानून की रक्षा करेगा, और राज्य के लोगों की सेवा में स्वंय को समर्पित करेगा । इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से संबन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है।

उधर अनुच्छेद 163(1)स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पापदन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा ।

अनुच्छेद 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराऐं नही हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असंभव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वंय ऐसी परिस्थितियॉ पैदा करते है जहॉ राज्यपाल को बडे कदम उठाने पडते हैं।

10.4 मन्त्रिपरिषद और मुख्यमन्त्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यो के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधान सभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

10.4.1 मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है । वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमन्त्री स्वंय अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के संदर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्य मंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैः

(अ) मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से संबन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये ।

(आ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे मुहैय्या कराये तथा

(इ) राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।

मुख्यमन्त्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधान सभा को भंग करने की सिफारिश ,राज्यपाल से कर सकता है।

10.4.2 मुख्यमन्त्री के कार्य

शक्तियों और कार्यो की दृष्टि से मुख्यमन्त्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्य मंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्य मंत्री की सारी शक्तियॉ और कार्य मंत्री परिषद में निहित है जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढाती है और कानून पास हो जाते है तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित है यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहिचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका को सम्बोधित करता है तथा संदेश भेजता है परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधान सभा को बर्खास्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

10.4.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते है और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक म़ंत्री विधान सभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरूद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधान सभा के सदस्य सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधान सभा मे पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते है। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते है और क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 142वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधान सभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरूद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रि मण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

10.4.4 मुख्यमन्त्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमन्त्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते है । ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

10.5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कडवाहट रहती है। इस कडवाहट का कारण हैं दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है । जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती है ,तब राज्यपाल और मुख्यमन्त्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली जुली सरकारें है वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उडीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 06 दिस्मबर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर कानूनी थी क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में केंद्र सरकार का फैसला था औचित्यपूर्ण था क्योंकि बर्खास्तगी का आधार ''धर्म निरपेक्षता'' था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमन्त्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमन्त्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी अयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसमबर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमन्त्री बनाये गये, चुनाव लडा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है ।

अभ्यास प्रश्न:

1.राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है ?

2.राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?

3.राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?

4.भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?

14.राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है ?

6.राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?

7.दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?

10.6 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी, राज्य में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है-राज्यपाल जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमन्त्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ है वह संवैधानिक है लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है ,इसलिए वह अधिक सशक्त है। मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-3146 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है। सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। उ0प्र0 के प्रथम मुख्यमंत्री पं0 गोविंद वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बडी गरिमा का पद है। उदाहरण उ0प्र0 की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

10.7 शब्दावली

कन्वेंशन:	परम्परा
रेमीशन:	सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना
रेपरीव:	सज़ा माफ करना या टालना
डिसक्रीशन:	छूट की स्वतंत्रता
रेस्पाइट:	सज़ा में राहत देना

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.राष्ट्रपति 2. 35 वर्ष 3. अनुच्छेद 356 4.संघात्मक 5.मुख्यमंत्री 6.राज्यपाल 7. 52वे संवैधानिक संशोधन

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

दुबे, एस0एन0 भारतीय संविधान और राजनीति

माहेश्वरी, श्रीराम स्टेट गवर्नमेंटस इन इण्डिया

पाण्डे, लल्लन बिहारी दि स्टेट एक्ज़ीक्यूटिव

पायली, एम0वी0 इण्डियाज़ कान्सटीटयूशन

10.10सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई 11: राज्य विधान मंडल

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 राज्य विधान मंडल

- 11.3.1 राज्य विधान परिषद
- 11.3.2 राज्य विधान सभा
- 11.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ
  - 11.3.4.1 विधायी शक्तियाँ
  - 11.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ
  - 11.3.4.3 वित्तिय शक्तियाँ

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में हमने राज्यपाल के बारे अध्ययन किया हैं। जिसमें यह देखा है कि राज्य में राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं वह संवैधानिक है लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मंत्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मंत्रिपरिषद का मुखिया होता हैं, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी हैं और विवादास्पद भी। सशक्त मुख्यमंत्री वह हैं जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। राज्यपाल का पद बडी गरिमा का पद है। राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही हैंजो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

अब हम इस इकाई में राज्य विधान मंडल के बारे में अध्ययन करेंगे जिसमें यह देखेंगे कि राज्यों में भी संघ का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया हैं। इस लिए राज्य में विधान मंडल की वही भूमिका है जो संघ में संसद की हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम-

1.यह जानेंगे कि राज्य विधान मंडल की संरचना किस प्रकार की हैं।

2.यह समझ सकेंगे कि विधान सभा के संरचना किस प्रकार से होती हैं।

3.यह अध्ययन करेंगे कि विधान सभा की संरचना किस प्रकार की होती हैं।

4.अंततः हम विधान मंडल की शक्तियों का अध्ययन कर सकेंगे।

11.3 राज्य विधान मंडल

भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यह न केवल संघ के स्तर पर वरन राज्य के स्तर पर अपनाया गया है। राज्य विधानमण्डल में दो सदन होते है। विधान परिषद- जो कि उच्च सदन है, जो परोक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने के साथ मनोनीत किये जाते है, जबकि विधानसभा, जिसे निम्न सदन भी कहते है। इसे जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैंक्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना, 6 राज्यों में विधान परिशदें सृजित हैं।

11.3.1 राज्य विधान परिषद

विधान परिषद की संरचना-संविधान के अनुच्छेद 171 के अनुसार राज्य विधान परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। लेकिन किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। विधानपरिषद के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचन मंडल द्वारा किया जाता है। इसका गठन इस प्रकार से होता है-

1- समस्त सदस्यों का एक तिहाई भाग नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और स्थानीय प्राधिकारियों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचन मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

2- समस्त सदस्यों के बारवें भाग के बराबर (1/12) का निर्वाचन तीन वर्ष के स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण सदस्यों के द्वारा।

3- सदस्य न्यूनतम तीन वर्ष से शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों के द्वारा जो (1/12) माध्यमिक पाठशाला की शिक्षण संस्थाएं न हो।

4- एक तिहाई सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा।

5- अनन्ततः समस्त सदस्यों के छठे भाग के बराबर राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जाता हैंजो साहित्यिक, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्याति उपलब्ध व्यावहारिक अनुभवी हो।

एम॰वी॰पायली के अनुसार कहा जा सकता है कि राज्य विधानसभा की रचना लोकसभा के ढाँचे पर हैंतथा विधान परिषद की राज्यसभा से समानता है।

विधान परिषद की अवधिः- संसदीय परम्परा के अनुरूप और राज्य सभा के समान विधान परिषद का भी विघटन नहीं होता है। इनके तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पर सेवानिवृत्त होते है। इसलिए सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। परन्तु यदि मृत्यु, त्याग-पत्र आदि कारणों से आकास्मिक रिक्ति की दशा में उस पद हेतु जो सदस्य निर्वाचित होगा वह शेश अवधि के लिए होगा न कि 6 वर्ष के लिए।

सदस्यता के लिए अर्हताः- विधानमण्डल के दोनों में से किसी भी सदन के सदस्य होने के लिए निम्न अर्हताएं होना आवश्यक है-

1- वह भारत का नागरिक हो।

2- विधानपरिषद के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष और विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए।

3- उसके पास वे अर्हताए भी हो जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करे। अनुच्छेद 171।

निरर्हताः- इसके संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 191 में किया गया है-

1- केन्द्र या राज्य के अधीन लाभ का पद धारण करने की स्थिति में।

2- यदि वह पागल हो।

3- यदि वह दिवालिया हो।

4- जब उसने विदेशी राज्य की नागरिकता ले ली हैंअनुच्छेद 190 में प्रावधान है कि कोई सदस्य एक साथ मंत्रीमंडल के दोना सदनो का सदस्य नहीं हो सकता।

अनुच्छेद 190 (2) यदि कोई सदस्य दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डल सदस्य हो जाता हैंतो उसे 10 दिन के भीतर एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमण्डल से त्याग-पत्र देना होगा।

अन्यथा वह कही का सदस्य नहीं रहेगा। 190 (4) में यह प्रावधान है कि बिना सदन की अनुमति के यदि कोई सदस्य 60 दिन तक सदन से अनुपस्थित रहता हैंतो सदन के स्थान को रिक्त घोषित कर देगा।

एक महत्वपूर्ण तथ्य और स्पष्ट करना आवश्यक है कि यदि किसी सदन के सदस्य के निरर्हता का प्रश्न उठता हैंतो इस संबंध में राज्यपाल निर्वाचान आयोग की राय के अनुसार कार्य करना होगा। अनुच्छेद 192 (2)

विधानपरिषद के पदाधिकारीः- विधानपरिषद अपने सदस्यों में से सदन के कार्य के सुचारू संचालन हेतु सभापति और उपसभापति का चुनाव करते है। जो सदन का सदस्य बने रहने तक अपने पद पर बने रहते है। इसके पूर्व दोनों एक दूसरे को त्याग-पत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैंतथा सदन यदि 14 दिन की पूर्व सूचना देकर बहुमत के समर्थन से पद से हटा सकती है।

गणपूर्तिः- यह प्रावधान है कि दो बैठकों के बीच छः माह से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। सदन की कार्यवाही तभी प्रारम्भ हो सकती हैंजब सदन के सदस्यों का 10 प्रतिशत अवश्य उपस्थित हो तथा यह संख्या 10 से कम न हो।

11.3.2राज्य विधान सभा

जैसा कि हम यह स्पष्ट कर चुके है कि यह जनप्रतिनिधि सदन है। क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है। विधान सभा के सदस्यों की संख्या 500 से अधिक नहीं हो सकती और 60 से कम नहीं हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 333 में यह प्रावधान किया गया है कि यदि राज्यपाल की राय में आंग्तक भारतीय समुदाय को विधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हैंतो उस समुदाय से एक व्यक्ति को वह मनोनीत कर सकता है।

विधान सभा के सदस्यों की अर्हताः-

अनुच्छेद 173 के अनुसार-

1.वह भारत का नागरिक हो,

2.वह 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,

3.वह भारत सरकार या किसी राज्य के अधीन लाभ के पद पर न हो,

4.संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन विधि निर्धारित शर्तों को पूर्ण करता हों,

5.वह अन्य निर्धारित शर्तें पूर्ण करता हो, अर्थात वह दिवालिया, पागल न हो एवं उसने अन्य विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा व्यक्त न की हो

विधान सभा की अवधिः- इसकी अवधि 5 वर्ष होती है। 24 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 1976 में यह अवधि 6 वर्ष कर दिया गया जिसे 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा पुनः 5 वर्ष कर दिया राज्यपाल विधानसभा को 5 वर्ष से पूर्व भी भंग कर सकता है। आपातकाल में संसद विधि द्वारा एक वर्ष का कार्यकाल बढ़ा सकती है। परन्तु, आपातकाल समाप्त होने की दशा में यह वृद्धि 6 माह से अधिक समय तक लागू नहीं कि जा सकती।

गणपूर्ति, अधिवेशनः- विधान सभा की कार्यवाही तभी प्रारम्भ की जा सकती हैंजब समस्त संख्या की न्यूनतम 10 प्रतिशत उपस्थित हो राज्यपाल विधानसभा के अधिवेशन बुलाता है। किन्तु दो अधिवेशनों के बीच का अन्तर 6 माह से अधिक नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 176 यह उपबन्ध करता है कि प्रत्येक आम चुनाव के उपरांत, राज्यपाल, प्रथम सत्र को संबोधित करेगा।

विधानसभा के पदाधिकारी- -राज्य विधानसभा में दो पदाधिकारी होते हैं- अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष। इन दोनों पदाधिकारियों का निर्वाचन विधानसभा सदस्यों द्वारा सदन की प्रथम बैठक में किया जाता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कर्तव्यों का निर्वहन करता है। यदि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो तो विधानसभा दूसरे अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। विधानसभा के बहुमत द्वारा अध्यक्ष को भी पदच्युत किया जा सकता है।

11.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

संसदीय परम्परा के अनुरूप भारत में राज्यों में कानून निर्माण का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को होता है। इन्हें सातवीं अनुसूची के राज्यसूची में उल्लिखित विषयोंपर कानून बनाने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के कार्य और शक्तियों का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं में कर सकते है-

11.3.4.1 विधायी शक्तियाँ

राज्य विधान मण्डल को राज्य सूची के अतिरिक्त समवर्ती सूची के विषयोंपर भी कानून निर्माण का अधिकार हैंपरन्तु संसद को भी समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार है। जिसमें यह

प्रावधान है कि यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर संसद और विधानमण्डल कानून बनाते हैं तो और उनमें विवाद उत्पन्न हो तो संसद द्वारा निर्मित का कानून प्रभावी होगा। कोई भी विधेयक जहाँ दो सदन हैंवहाँ पर दोनों द्वारा पारित होकर और जहाँ केवल विधानसभा हैंउसके द्वारा परित होकर, राज्यपाल की स्वीकृति मिलने पर ही कानून बनता है।

सधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई समान अधिकार नहीं है। यदि कोई विधेयक विधानपरिषद में पेश किया जाता हैंऔर विधानसभा उस विधेयक को अस्वीकार कर दे तो वह समाप्त हो जाता है।

विधानसभा में पारित करने के पश्चात जब विधेयक विधानपरिषद में भेजा जाता हैंतो उसे तीन माह के भीतर वापस किया जाना आवश्यक है।

दोनों सदनों में किसी विधेयक पर असहमति होन की दशा में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं किया गया है। फलस्वरूप विधानसभा द्वारा विधेयक पर किया गया निर्णय अन्तिम होता है।

11.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

1- मंत्रीयों से नीति के विषयोंपर प्रश्न पूछने का।

2- बजट पर विमर्श की शक्ति।

3- मंत्रीपरिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव।

11.3.4.3 वित्तिय शक्तियाँ निम्नलिखित है

राज्य के बजट को विधानमण्डल की स्वीकृति अनिवार्य है।विधानसभा का राज्य के धन पर पूर्ण नियन्त्रण है। राज्य के बजट को विधानमण्डल द्वारा ही स्वीकृति प्रदान की जाती है। वित्तीय मामलों में विधानसभा की शक्तियाँ विधान परिषद से अधिक हैं। संविधान के अनुसार धन विधेयक केवल विधानसभा में पेश किया जाता हैंइसके द्वारा पारित होने पर विधान परिषद को भेजा जाता है। विधानसभा के किसी भी संशोधन को मानने के लिए विधानसभा बाध्य नहीं है। कोई विधेयक धन विधेयक हैंया नहीं इसका निर्धारण विधानसभा अध्यक्ष के द्वारा किया जाता है। धन विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकते है। साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। विधान परिषद के सुझावों को मानना विधानसभा में ही अनुदानों की मांगों पर मतदान बजट में निहित राशियों में कटौती, अरोपित करों में छूट दी जा सकती है। वित्त पर नियन्त्रण सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के माध्यम से किया जाता है। वित्तीय आपातकाल में ससंद राज्य विधानसभा को वित्त सम्बन्धी निर्देश दे सकती हैंतथा राज्य के वित्त विधेयक को अपने समक्ष प्रस्तुत करके उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राज्य विधान परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई)1/3) से अधिक नहीं होगी।सत्य असत्य/

2.राज्य विधान परिषदलिए किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी ।असत्य/ सत्य

3.विधानपरिषद के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष होनी चाहिए। सत्य /असत्य
4.विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए। सत्य असत्य/
5.साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। सत्य असत्य/

11.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचाते है कि हमारे संविधान के द्वारा संघ के समान राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई हैं। जहाँ पर दो सदन हैंवहाँ विधान परिषद, विधान सभा और राज्यपाल को मिलाकर विधानमंडल कहलाता हैं जिन राज्यों में विधान परिषद नहीं हैं वहाँ पर राज्यपाल और विधान सभा मिलकर विधान मंडल कहलाते हैं। हमारे विधान मंडल में विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैंक्योंकि इनके सद्श्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता हैं। जब कि विधान परिषद के सदश्यो का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता हैं। यह एक स्थाई सदन हैंजिसके एक तिहाई सद्श्य प्रत्येक दो वर्ष के अंतराल पर सेवा निवृत्त होते हैं। यद्यपि सद्श्यों का कार्यकाल ६ वर्ष होता हैं।जबकि विधान सभा के सद्श्यो का कार्यकाल 5वर्ष होता हैं। यह कार्यकाल विधान सभा का भी हैंपरन्तु इसके पूर्व भी कुछ दशों में इसका विघटन किया जा सकता हैं। हमने यह भी अध्ययन किया हैंइस इकाई में कि राज्य में मुख्य क़ानून निर्मात्री संस्था राज्य विधान मंडल ही हैं।

11.5 शब्दावली

जनप्रतिनिधि सदन - विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इनके सद्श्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता हैं।
संसद – राष्ट्रपति ,राज्य सभा और लोक सभा को मिलाकर बनती हैं।

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य2. सत्य3. सत्य4. सत्य 5. सत्य

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति
2.आर.एन. त्रिवेदी एवं एम.पी.राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
3.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति

11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.ब्रज किशोर शर्मा - भारतीय संविधान
2.दुर्गादास बसु - भारतीय संविधान

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.राज्य विधान मंडल पर एक निबंध लिखिए।

2.राज्य विधान मंडल की शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई 12: सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, संगठन ,कार्य एवं शक्तियां

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 न्यायपालिका

12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन

12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति

12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध

12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय

12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार

12.5 उच्च न्यायालय

12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारत में किस प्रकार से एकीकृत न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है उसके बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्य क्या हैं, उसकी अधिकारिता क्या हैं? उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता हैंऔर किस आधार पर इसका अध्ययन करते हुए उसके अगले चरण में हम देखेंगे कि किस प्रकार से यह संविधान की संरक्षक हैंउसका व्याख्याकार हैं। यही नहीं नहीं लोकतंत्र में नागरिको के अधिकारों को बहुत महत्व होता हैं। इस लिए उन अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी अर्थात उसके प्रवर्तन में किसी प्रकार के अवरोध आने पर सर्वोच्च न्यायालय में जाया जा सकता हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम-

1. लोकतंत्र में स्वतन्त्र न्यायलय के महत्व को जान सकेंगे।
2. सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों के बारे में जान सकेंगे।
3. सर्वोच्च न्यायलय को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने में लिए क्या प्रावधान किये गए हैं, उसका अध्ययन कर सकेंगे।
4. न्यायिक पुनरावलोकन को जान सकेंगे।

12.3 न्यायपालिका

शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायापालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कानून के क्रियान्वयन और कानून की व्याख्या और उसकी वैधता, अवैधता की व्याख्या से संबंध रखती है। प्रस्तुत इकाई में हमें न्यायपालिका का अध्ययन करेंगे। लोकतंत्र में तो यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि एक तरफ तो यह व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करती हैंतो कार्यपालिका के कार्यों का भी संविधान के उपबंधों के अधीन परीक्षण कर उसकी वैधता और अवैधता का निर्णय करती है। साथ ही भारत में न्यायपालिका तो संविधान की रक्षण भी है। जहाँ अस्पष्टता की स्थिति हो, संविधान की मूलभावना के अनुरूप उसकी व्याख्या भी करती है। संविधान के द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों की रक्षा और व्याख्या के गुरूतर दायित्व का निर्वाह भी करती है।

भारत में अमेरिका के समान दोहरी न्यायिक व्यवस्था नहीं है वरन यहाँ पर एकीकृत न्यायपालिका जो पिरामिडाकार में सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय आदि तक संगठित है।

12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन

उच्चतम न्यायालय के गठन के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 224 में किया गया है। संविधान इस बात का प्रावधान करता है कि सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना गठन और उसकी शक्तियों से संबंधित विधान करने का अधिकार संसद को है।

मूल संविधान के द्वारा जो प्रावधान किया गया उसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश थे। परन्तु बाद के परिवर्तनों के द्वारा जिसमें अन्ततः 1986 में संविधान में संशोधन कर प्रावधार के अनुसार एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में यह संख्या 26 है।

तदर्थ न्यायाधीशः- अनुच्छेद 127 इस बात का उपबन्ध करता है कि यदि उच्चतम न्यायालय में, न्यायाधीशों की गणमूर्ति न हो तो, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से, मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से बैठकों में उपस्थित होने के लिए अनुरोध कर सकते हैं।

अनुच्छेद 128 इस बात का प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय में जज हो सकता है, उससे उच्चतम न्यायालय में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकते है।

12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। इस हेतु राष्ट्रपति, अनुच्छेद 124 (2) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से परामर्श करेंगे। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के

अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की स्थिति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अनिवार्य रूप से परामर्श करेंगे।

न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु योग्यताः- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 (3) में इस प्रकार का प्रावधान किया गया हैंजो इस प्रकार है-

1- वह भारत का नागरिक हो

2- देश के किसी उच्चतम न्यायालय का न्यूनतम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो या

3- न्यूनतम 10 वर्ष किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा हो,या

4- राष्ट्रपति की राय में पांरगत विधिवत्ता हो।

कार्यकालः- इस संबध में न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं किया गया है। इनका कार्यकाल 65 वर्ष की उम्र तक हैंइसके पूर्व वह राष्ट्रपति को संबोधिति हस्ताक्षर से त्याग-पत्र दे सकते है। इसके अतिरिक्त उन्हें 'सावित कदाचार' या असमर्थता के आधार पर संसद केविशेषबहुमत से पारित प्रस्ताव पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से भी पद से हटाया जा सकता है।

महाभियोगः- जैसा कि हम ऊपर यह देख चुके है कि अनुच्छेद 124 (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। संविधान के द्वारा प्राप्ति शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम 1968 अधिनियमित किया है। जिसमें न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया इस प्रकार है-

1- सर्वप्रथम इस हेतु राष्ट्रपति से इस हेतु समावेदन करना होगा। यदि प्रस्ताव को लोकसभा में प्रस्तुत करना हैंतो कम-से-कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति और यादि राज्यसभा में प्रस्तुत करना हैंतो कम-से-कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति होनी आवश्यक है।

2- यदि प्रस्ताव लोकसभा में हो तो लोकसभा में अध्यक्ष और यदि राज्यसभा में हैंतो सभापति आवश्कतानुसार परामर्श किसी से ले सकता है। परन्तु वह प्रस्ताव का स्वीकार/अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा।

3- अध्यक्ष/सभापति यदि प्रस्ताव को ग्रहण कर लेते हैंतो एक समिति गठित की जायेगी जिसमें तीन सदस्य होंगे-

a. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या कोई अन्य एक न्यायाधीश

b. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों में से कोई एक

c. कोई पांरगत विधिवेत्ता

4- यदि यह तीन सदस्यीय समिति इस प्रस्ताव पर सहमत होती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी हैंया असमर्थता से ग्रस्त हैंतो, समिति प्रस्ताव और अपने प्रतिवेदन को उस सदन में रखती है, जहाँ प्रस्ताव लंबित है।

5- प्रस्ताव पर दोनों सदनों के अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों केविशेषबहुमत से यदि पारित हो जाता हैंतो वह राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

6- अन्ततः राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश जारी करता है।

12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध

जैसा कि हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके है कि संविधान के रक्षक उसके व्याख्याकार और नागरिकों के अधिकारों के रक्षक के रूप में न्यायापालिका को बहुमत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने की जिम्मेदारी संविधान के द्वारा प्रदान किया गया है। ऐसी स्थिति में इतने गुरूतर दायित्व के निर्वहन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि न्यायपालिका को उसके कार्यों में अन्य संस्थाओं (विधायिका, कार्यपालिका) के दखल से स्वतन्त्र रखा जाए। इस बात का ऐहसास भारतीय संविधान निर्माताओं को था इसलिए उन्होंने इस हेतु, प्रावधान किये है, जो इस प्रकार है-

1- संविधान के द्वारा न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के उपरान्त पद से हटाने की प्रक्रिया बहुत ही दुरूस्त हैंजिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

2- उच्चतम और उच्च न्यायालय पर होने वाला व्यय भारत की संचित निधि पर पारित है, जिससे कोई दबाव वित्तीय कारकों के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है।

3- सेवाकाल में न्यायधीशों के लिए कोई अलामकारी परिवर्तन (जैसे वेतन, भत्ते कम करना आदि) नहीं किया जा सकता। ऐसा के वित्तीय आपातकाल के दौरान किया जा सकता हैंन तो उसके पहले और न ही बाद में।

4- किसी न्यायाधीश के द्वारा अपने कर्त्तव्यों के अनुपालन में किये गये आचरण में संसद/राज्यविधान मण्डल में चर्चा नहीं हो सकती।

5- उच्चतम और उच्च न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। किसी न्यायालय को अभिलेख न्यायालय कहने के मुख्यतः दो आधार होते है।

1- जब न्यायालय के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति हो।

2- इसके निर्णय साक्ष के रूप में प्रस्तुत किये जाते है। जब से निर्णय साक्ष के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैंतो ये प्रश्नगत नहीं किये जा सकते, वरन ये तो निश्चयात्मक प्रकृति के होते हैं।

12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकारः

इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्न विषय आते है-

1. प्रांरभिक अधिकारिता

2.अपीलीय अधिकारिता

3. लेख क्षेत्राधिकार

4.परामर्श अधिकारिता

5.न्यायिक पुनरावलोकन

1- प्रारम्भिक अधिकारिताः- संविधान के अनुच्छेद 131 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को कुछ प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे विषयों पर सुनवाई का प्रांरभिक अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। किसी अन्य न्यायालय को नहीं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रारम्भिक अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय को है-

(अ) संसदीय सरकार और एक राज्य या उससे अधिक राज्यों के अन्य उत्पन्न किसी विवाद के सन्दर्भ में,

(ब) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच उठने वाले विवाद,

(स) दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद जो कि उनके वैधानिक अधिकारों के प्रश्न से संबंधित हो।

2- अपीलीय क्षेत्राधिकारः- सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। जिसे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। निम्नलिखित मामले में सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकार है-

(अ) संवैधानिक मामले में- जब उच्च न्यायालय के किसी निर्णय में संविधान की व्याख्या से संबंधित को विषय हो तो, उसके विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ब) दीवानी मामले में- अनुच्छेद 133 इस बात का प्रावधान करता है कि निम्नलिखित स्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय में, दीवानी मामलों में अपील की जा सकती हैंजबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि-

I. मामले में विधि या लोकमहत्व का कोई सारभूत प्रश्न निहित हो,

II. मामलें का निर्णय उच्चतम न्यायालय के द्वारा किया जाना आवश्यक है।

(स) फौजदारी मामले में- अनुच्छेद 134 में उन दशाओं का उल्लेख है जब फौजदारी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

I. जब उच्च न्यायालय के द्वारा किसी दोषमुक्त व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिये जाने का निर्णय दिया गया हो।

II.जब अपने अधीनस्थ न्यायालय से कोई वाद अपने को हस्तान्तरित करवाकर, अभियुक्त को दोषी करार देते हुए मृत्युदण्ड का निर्णय दे।

III.ऐसा तब भी किया जा सकता हैंजबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विषय, उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक हो।

3.लेख क्षेत्राधिकारःसंविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मोलिक अधिकारों का रक्षक भी बनाया गया है। इसी क्रम में नागरिकों के मोलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के तहत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निम्नलिखित लेख जारी कर सकता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेशण और अधिकार पृच्छा। इसके सन्दर्भ में हम मौलिक अधिकार के अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं।

4.परामर्शी क्षेत्राधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह किसी विषय में विधि के सारवान प्रश्न शामिल होने की दशा में, आवश्यक समझने पर सर्वोच्च न्यायालय से राय मांग सकता है। जिस विषय की सुनवाई कर न्यायालय अपनी राय दे सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसी राय मांगने पर, न तो सर्वोच्च न्यायालय राय देने के लिए बाध्य है, और न ही, सर्वोच्च न्यायालय यदि राय दे तो राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य हैं।

5.न्यायिक पुनरावलोकन- न्यायपालिका लोकतंत्र में नागरिक स्वतन्त्रता और अधिकारों के रक्षक के रूप में अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक तभी निर्वाह कर सकता है, जब उसे कुछ बुनियादी अधिकार हो, जिसमें न्यायिक पुनरावलोकन भी एक है। इसकी शुरूआत अमेरिका में हुई है।

न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता हैंयदि उन्हें उपबंधों के अनुरुप नहीं पाता हैंतो उसे शून्य घोषित करता है।

12.5 उच्च न्यायालय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 214 में इस बात का प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। परन्तु, यदि संसद आवश्यक समझे तो वह दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो से अधिक राज्यों और किसी संघशासित क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना की जा सकती है।

संगठन -अनुच्छेद 216 में यह प्रावधान है कि एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर (जो राष्ट्रपति आवश्यक समझे) उच्च न्यायालय का गठन होगा।

अर्हताएं (योग्यताएं)- इस संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 217 में किया गया है-

1- वह भारत का नागरिक हो।

2- वह भारत में कम-से-कम 10 वर्ष कोई न्यायिक पद ग्रहण कर चुका हो या

3- उच्च. न्यायालय का कम-से-कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

नियुक्ति-इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के अतिरिक्त, उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श करता है।

पदावधि-उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र तक अपना पद ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त वह राष्ट्रपति को समय से पूर्व त्यागपत्र दे सकता है।

तथा साबित कदाचार और असमर्थता के आधार पर जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। वैसे ही इन्हें भी हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण- अनुच्छेद 222 के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश से परामर्श पर किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर सकता है।

12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय के निम्नलिखित क्षेत्राधिकार प्राप्त है-

1- अपीलीय- अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलीय अधिकार है।

2- प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार- अनुच्छेद 226 के अनुसार राजस्व संग्रह और मूल अधिकारों के प्रवर्तन हेतु, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है।

3- अन्तरण के अधिकार- अनुच्छेद 228 में प्रावधान है कि यदि उच्च न्यायालय को प्रतीत हो कि उसके किसी अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले में संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न निहित हैंतो उस मामले को अपने पास मंगाकर उस पर दो निर्णय दे सकता है।

4- अधीक्षण का अधिकार- अनुच्छेद 227 के तहत, उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है।

5- अनुच्छेद 231 में यह प्रावधान किया गया है कि जहाँ पर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय हैंवहाँ उन क्षेत्रों तक अन्यथा जिस राज्य के लिए उच्च न्यायालय होगा, वहाँ तक उसकी अधिकारिता होगी।

अभ्यास प्रश्न

2.सबसे बड़ा उच्च न्यायलय कौन सा हैं?

3.सर्वोच्च न्यायलय का मुख्यालय कहाँ हैं?

4. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश की नियुक्ति कौन करता हैं?

5. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश को किस आधार पर उनके पद से हटाया जा सकता हैं?

12.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के आधार पर हम पर हमें भारत में न्यायपालिका की संरचना का अध्ययन करने को मिला हैंजिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से भारत में एकीकृत न्यायपालिका हैंजिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायलय हैं। जो जहा एक तरफ संविधान की संरक्षक हैंतो दूसरी तरफ नागरिकों के मौलिक अधिकारों की भी संरक्षक हैं। जहाँ पर संविधान के किसी भाग को स्पष्ट समझने में किसी प्रकार की समस्या होती हैंतो वहाँ भी सर्वोच्च न्यायलय संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत के आधार पर व्याख्या करने का कार्य भी करती हैं। इसके साथ ही न्यायिक पुनरवलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित कानूनों का और कार्यपालिका के कृत्यों का परीक्षण संविधान के उपबंधों के आधार पर करती हैं,यदि उन्हें संविधान के उपबंधों के विपरीत पाती हैंतो उन्हें ,संविधान के उल्लंघन की मात्रा तक शून्य घोषित करती हैं। इस प्रकार से भारत में न्यायपालिका शासन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

12.7 शब्दावली

न्यायिक पुनरावलोकन - न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 21 ,2.इलाहाबाद , 3.नई दिल्ली , 4.राष्ट्रपति ,5.साबित कदाचार ,असमर्थता

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ रूपा मंगलानी- भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2.त्रिवेदी एवं राय- भारतीय सरकार एवं राजनीति
3.भारत का संविधान- ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिसहाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली
4.महेन्द्र प्रताप सिंह- भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
2.भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
3.The Constitution of India– J.C. Jauhari,2004 Sterling Publishers Private Limited New Delhi

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये।

2.संविधान और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायलय के कार्यों पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 13-भारतीय राजनीति में न्यायालय की भूमिका, न्यायिक सक्रियता

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका
13.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952
13.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय
13.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन
13.7 न्यायिक सक्रियता
13.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

आजादी के बाद से आज तक भारतीय राजनीति ने कई उतार-चढ़ाव देखे। आजादी के वक्त हमारी राजनीतिक स्थिति अत्यधिक दुर्बल थी। आज उसमें परिपक्वता आयी है। राजनीतिक समझ बढ़ी है। राजनीतिक सामाजीकरण का स्तर ऊपर उठा है। हमारे नीति नियंताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को उचित समझते हुए भारत में इस व्यवस्था को लागू किया। आज भारत का लोकतंत्र विष्व के सफलतम लोकतंत्रों में एक है। इसकी ये सफलता इसके चार स्तंभों पर टीकी है। ये चार स्तंभ कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायापालिका और समाज को सबसे अधिक जागृत व सचेत करने वाला मीडिया या पत्रकारिता है। आज लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोकतंत्र के चारों स्तंभों को बदलने के लिये मजबूर किया है। आज यदि भारतीय राजनीति का चेहरा बदला हैंतो न्याय की गति में भी परिर्वतन आया है। भारतीय राजनीति में जहॉ आम आदमी का हस्तक्षेप बढ़ा हैंवहीं दूसरी तरफ अपराध ने भी राजनीति में प्रवेश किया है। भारत में राजनीतिक अपराधीकरण को लेकर कई बार न्यायपालिका और विधायिका एक दूसरे के आमने सामने आते रहे हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप-

1) भारत में वर्तमान राजनीति के स्वरूप का अध्ययन करेंगे
2) वर्तमान में न्यायपालिका के बदलते स्वरूप को समझ सकेंगे
3) न्यायपालिका के लोक कल्याण स्वरूप का अध्ययन करेंगे

13.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका

हम जानते हैं कि भारत में संघीय राज व्यवस्था है। लेकिन अन्य संघ शासनों के विपरीत संघ और राज्य न्यायालयों की प्रथक व्यवस्था नहीं हैं। जैसा कि अमेरिकी शासन में हमें दिखता है। न्यायालयों की एक व्यवस्था संघ और राज्य दोंनो में कानूनों को लागू करने का काम करती है। भारतीय न्यायापालिका के पास कार्यकारणी और विधायिका की शक्तियों के विस्तार और सीमाओं की संविधान के अधीन व्याख्या और परिभाषा करने की सर्वोच्च शक्ति है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के साथ उच्च न्यायालय में शीर्ष स्तर की नियुक्तियॉ कार्यपालक शाखा द्वारा की जाती हैं। न्यायपालिका के पास निर्णय की असीमित शक्तियॉ हैं। ये विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को संविधान के अनुसार असंगत मानते हुए अमान्य ठहरा सकती है। न्यायपालिका के पास शक्ति है कि वह राजनीतिक सत्ताधारी या लोक सेवा की किसी भी कार्यपालिका की गतिविधि को गैर कानूनी करार देकर उसे निष्प्रभावी कर सकती है। इस मामलें में प्रत्येक नागरिक या गैर नागरिक को राजनीतिक शक्ति प्राप्त संगठनों सहित कार्यपालिका की गतिविधियों के खिलाफ षिकायतों का निवारण करने के लिये न्यायालय जाने या अपील करने का अधिकार है। सामाजिक न्याय और नागरिकों द्वारा राजनीतिक सत्ता के हस्तक्षेप के बिना मौलिक अधिकारों का प्रयोग सुनिश्चित करने के लिये कई सिविल और अन्य संस्थान या कानून संविधान के अधीन बनाये गये हैं। सभी नागरिकों को समान अधिकार मिलने तथा राजनीतिज्ञों या लोक सेवकों के भ्रष्ट आचरणों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने के लिये कई राष्ट्रीय आयोग (जैसे मानवाधिकार आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, महिला आयोग, इत्यादि) बनाये गये हैं।

यहॉ ये बात समझने वाली है कि न्यायिक निर्णय की अवहेलना न तो कार्यपालिका कर सकती है और न ही संसद। ये केवल अपील कर सकते हैं या न्यायालय के निर्णय की समीक्षा का निवेदन कर सकते हैं। लेकिन अंततः उन्हें न्यायिक निर्देषों का पालन करना ही होता है। भारत की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक पर्यावरण दूषित हुआ हैं। जिसके चलते अक्सर देखा जा रहा है कि लोक सेवकों व लोक संस्थानों से जैसी उम्मीद आम आदमी करता हैंवो उससे भटक गये हैं। लोक सेवक निजी स्वार्थो की राजनीति करने में लिप्त हैं। आम आदमी के हितों से उनका सरोकार कम होता जा रहा है। ये भारत की राजनीति में आज के दौर का सबसे बड़ा परिर्वतन है। आज विधायिका और कार्यपालिका जनहितों से दूर होती जा रही हैंऐसी स्थिति में आम आदमी न्यायपालिका की शरण में जा रहा है। इसीलिये हम देख रहें है कि बिगत कई वर्षो से न्यायापालिका ने अपनी कार्य शैली बदली हैं। वो आज आम आदमी के हितों के लिये आगे आयी है। जनहित याचिकाएं की शुरूआत कर जस्टिस पी.एन.भगवती ने भारत में गरीब जनता को एक नयी उर्जा देने का काम किया है। लेकिन हमारी न्याय प्रणाली में अभी सुधार होना बहुत जरूरी है। आज हमारे न्यायालयों में इतने मामलें लम्बित हैं कि फैसला आते-आते उस फैसले का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। आज सभी न्यायालय विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय लंबित मामलों के बोझ तले दबा हुआ है।

जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायिक व्यवस्था की क्षमता गंभीर रूप से क्षीण हो गयी है। न्यायापालिका से ये अपेक्षा की जाती है कि वो कार्यकारणी और विधायिका से स्वतंत्र रह कर कार्य करे तथा राजनीतिक दबाव से प्रथक रहे। फिर भी न्यायिक व्यवस्था के काम करने के लिये बजट, वेतन के साथ कई आधारभूत सुविधाएं कार्यकारणी द्वारा अनुमोदित होती हैं। कार्यकारणी से अटूट संबंध होने पर भी भारत की न्यायपालिका निष्पक्षता के लिये प्रसिद्ध है।

न्याय व्यवस्था को प्रभावित करने वाली समस्याओं, विषेशकर न्याय में होने वाली देरी के सवाल की विधि आयोग,विशेष कमेटियों, मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलनों द्वारा समय-समय पर पड़ताल की गयी लेकिन कोई प्रभावकारी कार्यवाही आज तक नहीं हो पायी है। आज भारत की राजनीति नाजुक दौर से गुजर रही है। राजनीति में जातिवाद, क्षेत्रवाद, परिवारवाद के साथ-साथ अपराध, धनबल, बाहुबल का समावेश हो चुका है। चुनाओं की बारम्बरता में बढ़ोत्तरी और अस्थायी सरकारों के आने से कई अनैच्छिक परिणाम हुए हैं। कार्यकाल कम होने तथा राजनीति में सत्ता हथियाने और सत्ता सुख लूटने व अधिकतम लाभ कमाने के लोभ में सरकारें /जन प्रतिनिधि अपने काम के प्रति गैर जिम्मेदार हो गये हैं। भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों की नयी व्यवस्था का उदय हुआ है। छोटी-छोटी राजनीतिक पार्टियॉ व उनके नेताओं की शक्ति बढ़ी है। सरकारों की स्थिरता अनिश्चितहै जिससे लोकतंत्र का मायना धुधलाने लगा है। गठबंधन सरकार मे सत्ता में बने रहने के लिये राजनीतिक भ्रष्टाचार ने वैधता हासिल कर ली है। नौकरषाही राजनीतिज्ञों का खिलौना मात्र बन कर रह गयी है। सरकार और मंत्रालयों के काम की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने की संसद की भूमिका समय के साथ गठबंधन सरकारों के चलते कम होती जा रही है। ये स्थिति भारतीय राजनीति के लिये संकट की स्थिति है। ऐसी स्थिति में न्यायालयों की जिम्मेदारियॉ बढ़ी है। न्यायालय और अधिक सक्रिय हुए। उनकी सक्रियता बढ़ी है।

13.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952

हमारी स्तंत्रता से लेकर आज तक हमारे देश में लोकतंत्र निःसन्देह मजबूत हुआ है। लेकिन राजनीतिक अपराधीकरण भी बढ़ा है। आम चुनाव साफ-सुथरे होने से वंचित हो गये हैं। 1952 में बना जन प्रतिनिधित्व अधिनियम लगभग-लगभग अर्थहीन हो गया है। जन प्रतिनिधि अधिनियम 1952 की धारा 8 के तहतकिसी प्रत्याशी के चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित होने के लिय दो वर्ष से अधिक की सजा मिलना आवश्यक है। यदि विशेष कानून के तहत यदि अपराधी पर अपराध सिद्ध हो जाता है तो उसे सजा कितनी भी मिले वो चुनाव नहीं लड़ सकता है। गंभीर आरोप विचाराधीन होने के बावजूद किसी प्रत्याशी को अयोग्य होने से बचाने के लिये न्यायषास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जब तक दोष सिद्ध नहीं हो सम्बंधित व्यक्ति को निर्देश माना जाता है। हांलाकि इसका उद्देश्यकैद या जुर्माने की सजा रोकने से है।

प्रख्यात विधिवेत्ता के.के.वेणुगोपाल के अनुसार फौजदारी कानून के तहतकम से कम तीन चरण ऐसे होते हैं जिन पर अभियुक्त दोषमुक्त हो सकता है। यदि अभियुक्त पर दोषी होने का आरोप लगता हैंतो अभियुक्त को यह अवसर मिलता है कि वह सिद्ध करे कि प्रथम दृष्टिया उसके विरूद्ध मामला नहीं बनता तथा संबंधित अपराध में सम्मिलित होने का समुचित आधार नहीं है। धारा 482 के तहतवह आरोप रद्द करने की मॉग कर सकता है। वेणु गोपाल के अनुसार अधिनियम की धारा 8 में संशोधन होना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया गया है कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध कोई न्यायालय धारा 8(1) में वर्णित किसी अपराध के लिये तय कर देती हैंया कोई ऐसे अपराध के लिये व्यक्ति आरोपित हो जाता हैंजिसकी सजा दो वर्ष से अधिक हो सकती हैंतो उसे चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित कर देना चाहिए। जन प्रतिनिधि अधिनियम की धारा 8 में ऐसा संशोधन नहीं होने के कारण उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2002 में ऐसोसिएशन आफ डेमोक्रेटिक रिफार्म से सम्बन्धित निर्णय सुनाकर यह प्रावधान किया गया था कि सभी प्रत्याशी अपने नामांकन पत्र भरने के साथ यह घोषणा करेंगे कि उनके विरूद्ध ऐसे अपरोधों के आरोप न्यायालय में विचाराधीन नहीं हैं जिनमें दो वर्ष से ज्यादा की कैद हो ।

सांसद और विधायक रहते हुए यदि किसी को सजा हो जाती हैंतो ऐसे मामलों में प्रतिनिधि अधिनियम का अलग मानदण्ड लागू होता है। ऐसे मामलों में भले ही धारा 8 में वर्णित किसी अपराध की सजा मिली हो या दो वर्ष से अधिक सजा हुई हो, इसके आधार पर उसे अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है। चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी के एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था दी किप्रत्याशी का निर्णय के खिलाफ अपील दायर करना या पुनर्विचार याचिका दायर करना ही प्रर्याप्त नहीं हैंबल्कि उसे अपीलीय अदालत में यह भी साबित करना होगा कि सुनवायी अदालत द्वारा उसके विरूद्ध निकाले गये निष्कर्ष तर्क विरूद्ध थे। वर्तमान सांसद और विधायकों के मामले में धारा 89(4) के अनुसार अपील दायर करने मात्र से अयोग्यता पर स्थगन लागू हो जाता है।

13.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय

न्यायिक पुनर्विलोकन से ये अभिप्राय लगाया जा सकता कि इसके द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यों की वैधता की जॉच की जाती है। इसका अर्थ ये हुआ कि न्यायालय द्वारा कानूनी तथा प्रशासनिक नीतियों की संवैधानिकता की जॉच तथा ऐसे कानून व नीतियों को असंवैधानिक घोषित करना जो संविधान के किसी अनुच्छेद पर अतिक्रमण करती हैं। कारविन के शब्दों में ‘‘ न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अंतर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में प्राप्त हैंजिन्हें वे अवैध व व्यर्थ समझे।’’ सन1803 में अंग्रेज न्यायाधीशमार्शल ने मार्बरी बनाम मेडीसन के मामले में **ज्यूडीशियल रिव्यू’**की व्याख्या करते हुए कहा था कि न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालयों द्वारा अपने समक्ष पेश विधायी कानूनों तथा कार्यपालिका अथवा प्रशासनिककार्यों का

वह निरीक्षण हैंजिसके द्वारा वह निर्णय करता है कि क्या यह एक लिखित संविधान द्वारा निषिद्ध किये गये हैं अथवा उन्होंने अपनी शक्तियों से बढ़ कर कार्य किया हैंया नहीं? सर्वोच्च न्यायालय के इसी अधिकार को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार कहा गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन का इतिहास लगभग 196 वर्ष पुराना है। इस सिद्धान्त का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली में सर्वप्रथम दिखलायी पड़ता है। लेकिन कालान्तर में भारत, जापान व अन्य देशोंमें भी इस व्यवस्था को देखा जा सकता है।

यहॉ ध्यान देने वाली बात ये है कि भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्निरीक्षण के सिद्धान्त का उल्लेख संविधान के उपबंधों में कहीं नहीं मिलता है। फिर भी न्यायिक निरीक्षण के सिद्धान्त के आधारभूत तत्वों की मौजूदा स्थिति के कारण इस सिद्धान्त का स्वतः विकास हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि न्यायिक निरीक्षण के लिये तीन अपरिहार्य शर्ते होती हैं। जिन्हें भारतीय संविधान पूरा करता है। ये शर्ते निम्न हैं-

क. लिखित व कठोर संविधान

ख. केन्द्र व राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन

ग. मौलिक अधिकारों की व्यवस्था

आईये अब भारतीय संविधान के उन प्रावधानों पर नजर डालते हैं जिसके आधार पर ये स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान निर्माता सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन जैसी व्यवस्था सौंपना चाहते थे।

एक- अनुच्छेद 13 में यह प्रावधान किया गया कि यदि किसी कानून द्वारा राज्य मूल अधिकारों का उल्लघंन करता हैंतो उस कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा अपने मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी नागरिक संवैधानिक उपचार प्राप्त करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिये कार्यपालिका और संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पुनर्विलोकन कर सकता है।

दो- संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता हैंजिससे संघ अथवा राज्यों ने अपने क्षेत्राधिकार को तोड़ा हो। संविधान के अनुच्छेद 254 में यह प्रावधान किया गया है कि समवर्ती सूची के विषय पर यदि किसी राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानून संघ सदन द्वारा निर्मित किसी कानून से संघर्ष में हैंतो राज्य का कानून अवैध माना जायेगा।

तीन- अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन का अधिकार एकमात्र केन्द्रीय संसद को ही प्रदान नहीं किया गया हैंअपितु उसमें राज्य विधान सभाओं की भी निश्चित भूमिका का उल्लेख है। यदि कोई संशोधन विधान प्रक्रिया के तहतनहीं होता तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

चार- अनुच्छेद 132 के अनुसार ऐसे मामलों में जहॉ संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित है, सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सर्वोच्च

न्यायालय को संवैधानिक मामलों में निर्णय देने का अंतिम अधिकार है। न्यायमूर्ति मुखर्जी के अनुसार-''भारत में संसदीय संप्रभुता के बजाय संवैधानिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। इस दृष्टि से भारत का संविधान अंग्रेजी संविधान के बजाय अमेरिकी संविधान से मिलता है। शासन के सभी उपकरण संविधान के अधीन हैं और न्यायालय को उनके कार्यों की वैधता की जॉच करने का अधिकार प्राप्त है।'' डी0डी0बसु के अनुसार- ''यह अधिकार सैद्धान्तिक दृष्टि से हमारे संविधान का आधारभूत सिद्धान्त है। ये सर्वोच्च न्यायालय में गोपालन प्रकरण में स्वीकृत किया गया है।''

13.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन

भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने पिछले कई वर्षों में कई अभियोगों के सिलसिले में कुछ ऐसे फैसले दिये हैं जिनमें न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। यथा-

(1)शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ,1952, इस अभियोग में संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि यह संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करता हैंक्योंकि ऐसा करना अनुच्छेद 13(2) द्वारा वर्जित था। चुनौती देने वालों का यह भी कहना था कि अनुच्छेद 13 में दिये गये 'विधि' शब्द के अंतर्गत अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित संविधानिक संशोधन भी सम्मिलित है।

सर्वोच्च न्यायालय ने चुनौती देने वालों के तर्कों को स्वीकार नहीं किया उसने निर्णय दिया कि-

- संविधान संशोधन की शक्ति जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित हैं अनुच्छेद 368 में निहित हैं।
- अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त 'विधि' का तात्पर्य केवल सामान्य विधायी प्रक्रिया से पारित कानून से हैंन कि संविधान संशोधन से जोकिविशेषप्रक्रिया द्वारा पारित किये जाते हैं।

(2)सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य,1965-इस वाद में सत्रहवें संविधान संशोधन की वैधता को चुनौती दी गयी थी। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ में दिये निर्णय को दोहराते हुए कहा कि मूल अधिकारों में संशोधन अनुच्छेद 368 में सम्मिलित हैं।

(3)गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य,1967- हेनरी गोलकनाथ अपनी बहुत सी सम्पत्ति छोड़ कर मर गये। स्थानीय अतिरिक्त आयुक्त ने गोलक नाथ की 418 एकड़ जमीन सिक्योरिटी आफ लैण्ड टेन्योर्स एक्ट के अन्तर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित की इसकी पुष्टि वित्त आयोग ने भी 1952 में कर दी। गोलकनाथ के पुत्र व पुत्री तथा पौत्रियों ने वित्त आयुक्त के निर्णय को संविधान के अनुच्छ्रेद 19(1) एक्स तथा 14 के विरूद्ध होने के कारण चुनौती दी इसके साथ 1951,1955,1964,1955 व 1964 में पारित प्रथम, चतुर्थ एवं सत्रहवें संशोधन को भी चुनौती दी है। इस वाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दो बिन्दु विचारणीय थे।

क- क्या संसद संविधान के भाग-3(मौलिक अधिकारों) में संशोधन कर सकती है?

ख- क्या अनुच्छेद 368 संसद को इस प्रकार का संशोधन करने का अधिकार देता है?

इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने छः/पॉच के बहुमत से अपना निर्णय देते हुए कहा-

- संसद नागरिकों के मूल अधिकारों में परिर्वतन का अधिकार नहीं रखती तथा वह भाग-3 में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो उनमें कमी करें या उन्हें समाप्त करें।

- सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय शंकरी बनाम भारत संघ तथा सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य मंे दिये गये निर्णय को बदल दिया। तथा निर्णय देते हुए कहा कि उसके पूर्ववर्ती निर्णय वाध्यकारी नहीं है।

- सर्वोंच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान संशोधन की प्रक्रिया बताता है।

- अनुच्छेद 368 द्वारा किया गया संशोधन अनुच्छेद 13(2) में वर्णित विधि की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

(4)केशवानंद भारती वाद- केरल में एडनर मठ के स्वामी केशवानंद भारती ने केरल भूमि सुधार संशोधन अधिनियम 1969 की वैधता को चुनौती दी तथा यह कहा कि इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 25, 14, 19(1) एवं 31 का उल्लघंन हुआ है। इस वाद में फिर वहीप्रश्नउठाये गये-

1. क्या अनुच्छेद 368 द्वारा मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है?

2. संसद के संविधान संशोधन के सम्बन्ध में क्या अधिकार हैं?

ध्यान देने वाली महत्वपूर्ण बात ये है कि इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने गोलकनाथ वाद में दिये गये निर्णय को बदलते हुए 24वें, 25वें संविधानिक संशोधन की उपधारा 2(अ) और 2(ब) और उपधारा 3 के प्रथम भाग की पुष्टि की तथा महत्वपूर्ण निर्णय देते हुए कहा कि- अनुच्छेद 368 के अंतर्गत मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है। संसद को संविधान के किसी सी उपबंध जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित हैंको संशोधन तथा उसे निरस्त करने का भी अधिकार प्राप्त है। ये बात ध्यान देने की है कि संसद को संविधान संशोधन का अधिकार तो दिया गया लेकिन ये उपबंद लगा दिया कि वो संविधान के मूल भूत ढॉचें को बदल नहीं सकता।

(5) ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य, 1950 - मद्रास के ए.के.गोपालन को निवारक निरोध अधिनियम के तहतबंदी बनाया गया जिस पर उसने अपने बंदीकरण को न्यायालयमें चुनौती दी। उसने अपने पक्ष में तर्क देते हुए कहा कि इस निरोध द्वारा अनुच्छेद 19 में प्रदत भारत में अबाध स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। ये दैहिक स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है। साथ ही अनुच्छेद 21 के दैहिक अधिकार का भी अतिक्रमण हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों आधारों को निरस्त करते हुए कहा कि- अनुच्छेद 21 तथा 19 स्वतंत्रता के दो विभिन्न प्रकार हैं। अनुच्छेद 21 में प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता का तथा अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त दैहिक स्वंतत्रता का अधिकार एक दूसरे से किसी भी तरह सम्बंधित नहीं हैं। अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता को चुनौती नहीं दी जा सकती है। वह अनुच्छेद 19(5) के अधीन निर्बन्धन लगाती है।

(6) मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ,1980- मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त के सम्बंध में व्याख्या की और 4-1 के बहुमत से निर्णय में ये कहा कि मूल अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व दोंनो एक दूसरे के पूरक हैं। अनुच्छेद 31-ग अनुच्छेद 14 तथा 19 का उल्लंघन करता है। इसमें संशोधन किया जा सकता है।

13.7 न्यायिक सक्रियता

लोकतांत्रिक ढॉचें में कार्यपालिका व विधायिका ही नीतिगत निर्णय लेती हैं। जो नीतियॉ बनायी जाती हैं उनको लागू करने की जिम्मेदारी भी निभाती हैं। कार्यपालिका व विधायिका अपना काम सही तरीके से कर रहीं हैं या नहीं ये देखने का काम न्यायपालिका करती है। जब कोई संस्था अपना दायित्व ठीक-ठाक से नहीं निभाती तो न्यायपालिका सक्रिय हो जाती है। न्यायपालिका की इस सक्रियता को ही न्यायिक सक्रियता का नाम दिया गया है।

वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता नामक शब्द बहुत अधिक सुर्खियों में है। हालांकि न्यायिक सक्रियता शब्द की चर्चा संविधान में कहीं भी नहीं की गयी है। लेकिन भारत के पूर्व न्यायाधीश पी.एन.भगवती के विचारानुसार जिन व्यवस्थाओं में न्यायालय को पुनर्वालोकन का अधिकार हैंवही न्यायिक सक्रियता का रूप है। हाल ही के दिनों में न्यायालयों ने ऐसे फैसले दिये हैं जो भारत के विकास को गति प्रदान करेंगे। इस समय जब भारत में त्वरित विकास की आषा बलवती है, न्यायालयों के लंबित मामलों की संख्या चिंता का कारण बनी हुयी है। सुव्यवस्था के अभाव में किसी भी देश या समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। त्वरित न्याय मिलते रहने पर लोंगो की कानून व व्यवस्थाओं के प्रति आस्था बनी रहती है। न्यायिक सक्रियता का समाज के सभी वर्गो ने स्वागत किया है। भारत में न्यायिक सक्रियता को बल देने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य जनहित याचिकाओं ने किया है। आम आदमी अपने अधिकारों के लिये सजग हुआ है। न्यायालयों की जटिल प्रक्रिया को न सझने के कारण न्याय की गुहार भी न कर पाने वाला आम नागरिक जनहित याचिकाओं के माध्यम से अपने न्याय को पाने में सफल हुआ है। इसे भारत में न्यायिक सक्रियता की सफलता ही कहा जा सकता है। न्यायालय का कार्य संवैधानिक पदावलियों की व्याख्या के साथ-साथ अब देश के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी बढ़ गया है। न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक पहलू को देखने से स्पष्ट होता है कि गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य 1967 में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल अधिकारों में संशोधन पर रोक लगाते हुए यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 में केवल संविधान में संशोधन की प्रक्रिया निहित हैंतथा संविधान के भाग-3 में संशोधन करने की शक्ति नहीं देता। सर्वोच्च न्यायालय ने इस वाद के निर्णय में पहली बार अपनी सक्रियता का परिचय दिया। बाद में संसद ने 24वें संविधान संशोधन द्वारा गोलक नाथ में दिये गये मामले को अप्रभावी बना दिया । सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती 1974 के मामले में 24वें संशोधन को यह देखते हुए विधि

मान्य बताया कि संसद किसी भी संशोधन के तहतसंविधान के मूलभूत ढॉचे में परिर्वतन नहीं कर सकती। 42वें संविधान संशोधन द्वारा संसद ने न्यायालय के निर्णय को अप्रभावी बनाते हुए यह व्यवस्था की कि अनुच्छेद 368 के तहतकिये गये संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। लेकिन न्यायालय ने मिर्नवा मिल 1980 के मामले में 42वें संविधान संशोधन के अंतर्गत अनुच्छेद 368 में जोड़े गये खण्ड-4 व 5 को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि यह संविधान के मूलभूत ढॉचे को प्रभावित करते हैं। पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राईट्स बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया,1980 के निर्णय में यह निर्धारित किया गया कि यह आवश्यकनहीं है कि न्याय पाने के लिये पीड़ित या शोषित व्यक्ति ही याचिका दायर करें। पीड़ित व्यक्ति की ओर से किसी अन्य व्यक्ति या संस्था द्वारा भी याचिका दायर की जा सकती है। इसे ही जनहित याचिका का नाम दिया गया और यहीं से जनहित याचिका वाद की शरूआत होती है। जनहित याचिका न्यायालय की सक्रियता में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। जनहित याचिकाओं ने आम आदमी को सजग बनाया है। न्यायालयों में बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं दायर हुयी हैं।

13.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)

न्यायिक सक्रियता के पीछे महत्वपूर्ण हाथ लोकहित याचिका का है। सही मायने में यदि देखा जाये तो न्यायिक सक्रियता का प्रमुख आधार लोकहित/जनहित याचिका ही है। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 32 के अधीन यह वर्णित है कि संविधान से लाभ पाने का अधिकार उसी व्यक्ति को हैंजिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हो। लोकहितवाद को परिभाषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा है कि -समाज के निर्धन व कमजोर वर्ग के लोंगो के संवैधानिक और विधिक अधिकारों में इसका काफी महत्व है। लोकहितवाद में जनहितवाद विधि के शासन का एक आवश्यकतत्व है। जनहितवाद के महत्व को बताते हुए कहा गया कि कमजोर और गरीब व्यक्ति जो न्यायालय में जाने में असमर्थ हैंउसकी क्षती से सम्बंधित याचिका अनुच्छेद 32 के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती है। जनहितवाद के लिये कुछ आवश्यकतत्व मुख्य हैं-

1. पीड़ित पक्ष न्यायालय में जाने में असमर्थ है।

2. यह याचिका पत्र द्वारा न्यायालय को सम्बन्धित करके लिखी जा सकती है।

3.पत्र में शपथ पत्र या कोई फीस आवश्यकनहीं है।

4.याचिका किसी भी संस्था या व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती हैं।

5. याचिका को लोकहित से सम्बन्धित होना चाहिए।

आइये अब भारत में जनहित याचिका के इतिहास पर नजर डालते हैं। जनहित याचिका का प्रथम मुख्य मुकद्मा 1979 में हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य   (ए.आई.आर.1979 एस.सी. 1360) वाद में कारागार और विचाराधीन कैदियों की अमानवीय स्थिति के संबंध में था। यह एक अधिवक्ता द्वारा इण्डियन एक्सप्रेस अखबार में छपे एक खबर, जिसमें बिहार राज्य में बंद हजारों

विचाराधीन कैदियों का हाल वर्णित था के आधार पर दायर किया गया था। मुकदमें के नतीजन 4000 से अधिक कैदियों को रिहा कर दिया गया। त्वरित न्याय को मौलिक अधिकार माना गया। जो कि उन कैदियों को नहीं दिया जा रहा था। इस सिद्धान्त को बाद के केसों में भी स्वीकार किया गया। एम.सी.मेहता और भारतीय संघ व अन्य (1989-2001) इस लम्बे चले वाद में आदेश दिया गया कि दिल्ली मास्टर प्लान के तहतऔर दिल्ली में प्रदूषण कम करने के लिये दिल्ली केरिहायशीइलाकों से करीब 10,000 औद्योगिक इकाईयों को दिल्ली से बाहर स्थानांतरित किया जाये। इस फैसले ने 1999 के अंत में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में औद्योगिक अषांति और सामाजिक अस्थिरता को जन्म दिया इसकी आलोचना भी हुयी। ये कहा गया कि न्यायालय द्वारा आम मजदूरों के हितों की अनदेखी पर्यावरण के लिये की जा रही है। इस जनहित याचिका ने 20 लाख के लगभग लोगों को प्रभावित किया था जो इन इकाईयों मे सेवारत थे। एक और फैसले में अक्टूबर 2001 में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि सभी सार्वजनिक बसों को चरणवद्ध तरीके से सिर्फ सी.एन.जी.(कम्प्रेस्ड नैचुरल गैस) ईंधन से चलाया जाय। क्योंकि यह माना गया कि सीएनजी डीजल की अपेक्षा कम प्रदूषण करती है। हांलाकि बाद में यह पाया गया कि बहुत कम गंधक वाला डीजल भी अच्छा व बेहतर विकल्प हो सकता है।

ऐसी याचिकाएं जिसमें न्यायालय ये मानता है कि इसमें जनहित का आधार नहीं हैंऐसी याचिकाओं को न्यायालय खारिज भी कर सकता। उदाहरण के लिये- अन्नाद्रमुक के सांसद पी.जी. नारायणन द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में दायर जनहित याचिका जिसमें न्यायालय ने संघ सरकार को जनहित में सन टीवी प्राईवेट लिमीटेड के डायरेक्ट टू होम सेवा के आवेदन को अस्वीकृत करने का अनुरोध किया गया था। न्यायालय ने इस याचिका को स्वीकार नहीं किया। जनहितवाद का सिद्धान्त स्थापित होने के बाद से न्यायालयों में जनहित याचिका अधिक संख्या में आने लगी। न्यायालय में दाखिल की जाने वाली याचिकाओं में कुछ तो वास्तव में महत्वपूर्ण व घोशणीय होती हैं जबकि कुछ व्यर्थ याचिकाओं को निरस्त करने में भी न्यायालयों को सुनवाई करनी पड़ती है। जिससे न्यायालयों का समय खराब होता है। गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू करने को चुनौती देने वाली एक जनहित याचिका को निरस्त करते हुए 17 फरवरी, 1997 को उच्चतम न्यायालय की एक खण्डपीठ ने जनहितवाद के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो मुख्य हैं-

अ- प्रत्येक नागरिक को यह मूलाधिकार प्राप्त नहीं है कि वह न्यायालय में जनहित वार दाखिल करे।

ब- न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह प्रत्येक जनहित याचिका को स्वीकार ही करे। न्यायालय को जनहित याचिका तभी स्वीकार करनी चाहिए जब वह प्रतिनिधित्व प्रकृति की हो।

स- न्यायालय अपने समक्ष दाखिल की गयी जनहित याचिका को तभी स्वीकार करेगा, जब उसे विष्वास हो जाये कि याचिका के बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।

आज भारत में जनहित याचिकाओं के चलते अनावष्यक मुकदमों की भी बाढ़ आ गयी है। बेवजह अनेकों मुद्दों पर जनहित याचिका दायर की जा रही है। जिससे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है

कि जनहित याचिका की महत्ता कम हो सकती है। इसके लिये न्यायालयों द्वारा प्रयास किया जा रहा है।

13.9 सारांश

इस इकाई में हमनें समझा कि न्यायपालिका किस तरह से दिन प्रतिदिन शक्तिशाली हुयी है। न्यायालयों ने अपनी कार्यषैली को बदला है। आज न्यायालय आम आदमी के पक्ष में खड़ा नजर आ रहा है। जब हमारे देश की व्यवस्था चलाने वाली संस्थाएं पथभ्रष्ट हो चुकीं हैं तब न्यायालयों ने आगे आकर इन संस्थाओं के कामों को अपने अधीन लेते हुए दोनों संस्थाओं कार्यपालिका व व्यवस्थापिका को सचेत कर उन्हें राह दिखायी है। न्यायालयों ने महत्वपूर्ण फैसले लिये हैं जिससे समाज में चेतना का प्रचार-प्रसार व आम जनता का संविधान व न्याय के प्रति विष्वास बढ़ा है। हमने इस अध्याय में ये भी समझा कि न्यायालय कैसे सक्रिय हुए हैं। न्यायपालिका ने प्रगतिषील निर्णय देते हुए जेल प्रशासन गरीबों को कानूनी सहायता, कैदियों और विचारधीन कैदियों की रिहाई के मामले में अपनी चिंता व्यक्त करते हुए ऐसे महत्वपूर्ण फैसले दिये कि जो हमेशा के लिये नजीर बन गये। सामाजिक चेतना रखने वाले न्याआधीशों ने जनहित याचिकाओं को महत्व देकर न्यायालय का क्षेत्राधिकार और उसकी शक्ति को दुनियॉ के सामने प्रस्तुत किया।

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. भारतीय शासन एवं राजनीति-पुखराज जैन एवं बी.एल. फर्ािड़या
3. रजनी पामदत्त- आज का भारत
4. सुभाषकश्यप-हमारी संसद
5. सुभाषकश्यप-हमारा संविधान

13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत का भविष्य-विमल जालान
2. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका
3. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्यपालिका व व्यवस्थापिका से अधिक शक्तिशाली होकर उभरी है हमारी न्यायापालिका। इससे आप क्या समझते हैं ?

2. संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय कैसे कार्य करता है?

3. भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन के महत्व को समझाते हुए तीन महत्वपूर्ण वादों का वर्णन कीजिए?

4.जनहित याचिका ही न्यायिक सक्रियता का मूल आधार है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करें?

इकाई 14- स्थानीय स्वशासन: पंचायती राज संस्थाएं एवं नगरीय स्वशासन

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

14.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन

14.5 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

14.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

14.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

14.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा ?

14.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध

14.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

- 14.10.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
- 14.10.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें

14.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

14.12 सारांश

14.13 पारिभाषिक शब्दावली

14.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.16 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.17 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

स्थानीय स्वशासन लोगों की अपनी स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है।

यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। ये समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शांति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने, तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का संम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियन्त्रण हो ताकि उसके संवर्द्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षों से अपना शासन स्वयं चलाते रहे हैं, जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे कई गांवों में परम्परागत रूप में स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1 स्थानीय स्वशासन के विषय में जान पायेंगे।
2 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंध को समझ सकेंगे।
3 स्थानीय स्वशासन की मजबूती और ग्रामीण विकास के साथ उसके संबंध को जान पाएंगे।
4 स्थानीय स्वशासन के महत्व को जानने में सक्षम होंगे।
5 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास के बीच संबंध को समझ सकेंगे।
6 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातों को जान सकेंगे।

14.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

स्थानीय स्वशासन शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर शासन के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक व्यवस्था सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समायाओं के हल का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मां गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे। भारत गावों का देश है, अतः गावों के विकास के बिना भारत की प्रगति संभव नहीं। गांधी जी गांवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे जाकि निचले स्तर पर लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसी प्रकार उनको पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबुत बनाने की वकालत की थी।

1) गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।

2) ग्रामस्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।

3) किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा? ये सभी बातें गांव वाले तय करेगें।

4) गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।

5) ऐसा शासन जहां लोग स्थानीय मुद्दों, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।

6) स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा, मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

14.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन

हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं, उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी। और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबंधन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे। लोगों को पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे। और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थी। बड़े क्षेत्र, पट्टी, तोक के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदनशील निर्णय भी पंचायतें बड़े

विश्वास के साथ करती थी। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्यायें स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।

धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थायें आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गांव में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं, जिन जंगलों का हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबंधन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास संबंधी नजरिया हमारा स्वयं का था उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है। और सरकारी योजनाएं राज्य या केन्द्र में बैठकर बनाई जाने लगी और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा।

परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुँच थी, उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो। उसको पाने के लिए व्यक्ति खीचातानी में लगा रहा। इससे कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर होता गया। और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी(छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।

लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाय। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।

इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनायें, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें। इस सोच को समेटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन कर पंचायतों को नये काम और अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों की अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

14.5 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं।ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में स्थानीय एवं वाह्य संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भांति परिचित होते हैं। तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं। गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछडे वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

14.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायते स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं , और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायते स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगीं व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

14.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम हैं पंचायतें।

चूंकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती हैं अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है। पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं, विवादों का निपटारा करतें हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है। पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अतः पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूप से स्वशासन में भागीदारी होगी। इस के लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते है जब गांव के विकास संबन्धी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी। लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एकमात्र एक ऐसा मंच है जहॉ आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर स्थानीय विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबके विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

14.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?

1 .स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह निःस्वार्थ भाव वाला हो।

2.सक्रिय ग्राम सभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होंगे तभी एक सशक्त पंचायत की नींव पड़ सकती है। अतः ग्राम सभा के हर सदस्य को जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।

3 .स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्धन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अतः स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बनाकर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।

4 .स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव वासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वयन करेंगे। उपर से थोपी गई परियोजनायें कभी भी ग्रामीणों में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती, अतः सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी वास्तविक रूप से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा।

5 .पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम हैं। अतः समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया मे भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना " लोक शासन" को मूर्त रूप दे सकती है।

6 युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी हैं। इनके अन्दर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान हैं इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व उर्जा का रचनात्मक कार्यो में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

7 पंचायतीराज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाने में असमर्थ हैं।

14.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध

1 .स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक दूसरे के पूरक हैं। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।

2.स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है अतः पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।

3 .ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेंगीं। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधियों में पूर्ण नियन्त्रण।

4 .ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सब को समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गो की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।

5 .मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।

6 .स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्ण द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

अभ्यास प्रश्न-1

1. ग्राम स्वराज के पक्षधर थे?

क. तिलक ख. महात्मां गांधी

ग. जवाहर लाल नेहरु घ. सरदार पटेल

2. स्थानीय स्वशासन से संबंधित...................................... संविधान संशोधन हैं?

14.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व

सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुंचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

14.10.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1) 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2) नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।

3) यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।

4) एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।

5) इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।

6) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7) पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।

8) पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।

9) इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।

10) 73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।

11)हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।

12)उक्त संशोधन के अन्तर्गत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।

13)पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।

14)हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

कुल मिलाकर संविधान के 73वें संशोधन ने नवीन पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न सिर्फ पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर, दलित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

14.10.2 74वें संविधान संशोधन में मुख्य बातें

1) संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

2) इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है

3) नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।

4) समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

5) 74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6) इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

7) देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

8) नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

9) नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

10) समाज की कमजोर जनता का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

11) प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

12) सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

14.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गावों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुंचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं

का बेहतर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। नई पंचायती राज व्यवस्था से अनेक अपेक्षाएं हैं। इस आधार पर स्थानीय स्वशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाना।

2. लोगों की समस्याओं को समझना ओर उसके हल के लिए योजनाएं बनाना।

3. दुर्गम व दुरस्थ गावों तक राजनीतिक समझ को परिपक्व करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।

4. सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों का प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना।

5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रुप से सक्रिय करना तथा उनका सर्वांगिण विकास करना।

किन्तु स्थानीय स्वशासन के लिए यह मार्ग चुनौतियों से भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक वर्षों में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज की असफलता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। वर्तमान में पंचायजी राज व्यवस्था के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हैं।

1. स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी है, तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

2. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के प्रशिक्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं।

3. पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, परन्तु महिलाएं आज भी इस व्यवस्था में स्वतंत्र होकर व स्व निर्णय लेकर कार्य नहीं कर पा रही हैं।

4. पंचायती राज व्यवस्था में धन व शक्ति के दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं, इससे निपटना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य है।

पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरुक होना जरुरी है। साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को को भी अपना दायित्व सक्रियता से निभाना होगा तथा उन्हें जाति, धर्म व सम्प्रदाय से उपर उठ कर विकास कार्यों पर अपना ध्यान लगाना होगा।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 73वॉं संविधान संशोधन किस से संबंधित है।

क)पंचायतों ख) नगर निकायों ग) संविधान सभा घ)शिक्षण संस्थाओं

2. किस संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया?

3. नगर निकायों से सम्बंधित संविधान संशोधन है ....?

14.12 सारांश

शासन-प्रणाली के उपलब्ध रुपों में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली सर्वोच्च व उत्तम है क्यों कि इस शासन प्रणाली में जनता की भागीदारी सुनिश्चित रहती है। जनता की भागीदारी को अधिक मजबुत बनाने और शासन में उनकी पहुँच को सुलभ बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन की कल्पना को साकार करने के लिए संविधान में 73वां और 74वॉं संसोधन किया गया।

73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायतों व जिला स्तर पर जिला परिषदों व शहरी स्तर पर नगर पालिका, नगर परिषद, नगर पंचायत व नगर परिषदों का गठन कर स्थानीय स्वशासन को साकार रुप दिया गया। स्थानीय स्वशासन के इन रुपों के माध्यम से स्थानीय लोगों की शासन-सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर जनहित के कार्यों में सक्रियता, निचले स्तर पर शासन में भागीदारी और और समस्याओं का निराकरण, यहि स्थानीय स्वशासन का ध्येय है।

14.13 शब्दावली

संवर्द्धन- वृद्धि या विकास

वाह्‌य- बाहरी या अन्य

सूक्ष्म नियोजन- योजनाओं का छोटे रुप में लागू होना

त्रिस्तरीय- तीन स्तर

14.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 1. ख. महात्मां गाँधी 2. 73वां व 74वां संविधान संशोधन

अभ्यास प्रश्न-2 1. क) पंचायतों से 2. 73वां संविधान संशोधन 3. 74वां संविधान संशोधन

14.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायती राज प्रशिक्षण सन्दर्भ सामाग्री ,2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

2. पंचायती राज प्रशिक्षण मार्गदर्शिका, 2004 हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

3. जल, जंगल व जमीन पर ग्राम पंचायतों के अधिकारों की नीतिगत स्तर पर पैरवी, 2002, हार्क देहरादून एवं प्रिया नई दिल्ली

14.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

भारत में पंचायती राज- डॉ0 के0 के0 शर्मा

भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

14.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन से क्या तात्पर्य है? स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंधों को स्पष्ट करें।

2. स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता क्यों है? स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंधों की चर्चा करें।

3. 73वें व 74वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

4.स्थानीय स्वशासन की विशेषताओं और चुनौतियों को स्पष्ट कर